सारनाथ का संक्षिप्त परिचय।

लेखक
श्री मदनमोहन नागर एम. ए.,
संग्राहक,
पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा।

मैनेजर आफ पब्लिकेशन्स, देहली, द्वारा प्रकाशित।
मैनेजर, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया प्रेस, कलकत्ता,
द्वारा मुद्रित।
१९४१।
Price Re. 1 or 1sh. 6d.

सारनाथ का संक्षिप्त परिचय।

लेखक

श्री मदनमोहन नागर एम. ए.,

संग्राहक,

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा।

मैनेजर आफ पब्लिकेशन्स, देहली, द्वारा प्रकाशित।

मैनेजर, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया प्रेस, कलकत्ता, द्वारा मुद्रित।

१९४१।

विषय-सूची ।

पृष्ठ

——o——

चित्र-सूची ।

अवतरणिका।

बौद्ध धर्म के इतिहास में सारनाथ का स्थान अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। कारण, यह वही पवित्र स्थान है जहां भगवान् बुद्ध ने अपना सर्व-प्रथम उपदेश अपने पांच शिष्यों को दिया था। बुद्ध के जीवन की इस प्रधान घटना को जिसका प्रभाव सारे मानव इतिहास पर पड़ा, भारतीय कलाकारों ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन-मुद्रा के रूप में प्रकट किया है। सारनाथ के श्रद्धालु एवं धर्मपरायण शिल्पी (artists), संभवतः स्थानीय विशेषता के कारण ही इस मुद्रा की मूर्तियां बनाना विशेष पसंद करते थे। यही कारण है कि सारनाथ की सर्व-श्रेष्ठ बुद्ध मूर्ति जिस की गणना भारतीय शिल्प की सर्वोत्तम कृतियों में है, भगवान् बुद्ध को पद्मासन पर धर्म-चक्र-मुद्रा में चित्रित करती है।

ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी तक सारनाथ बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र रहा। इस डेढ़ सहस्र वर्ष के इतिहास में जैसे-जैसे युग बदलते गये वैसे-वैसे सारनाथ के इतिहास में भी परिवर्तन का क्रम चलता रहा। इस स्थान पर सबसे प्राचीन स्मारक (relics) मौर्य्य सम्राट् अशोक के मिले हैं, जिन्होंने

समस्त भारतीय शिल्पकला को गौरव प्रदान किया है। इस युग में, अशोक के बौद्ध होने के नाते, सारनाथ ने राजकीय मदद प्राप्त की। किन्तु, राज्यसत्ता के धार्मिक दृष्टि-कोण बदल जाने के कारण शुङ्गकाल में इसका वैभव सांची या भारहुत की तरह बढ़ा-चढ़ा न रहा, यद्यपि उस युग के थोड़े बहुत उपलब्ध उदाहरण यह स्पष्ट सूचित करते हैं कि भारतीय कला के विकास की प्रमुख धारा के तट पर खड़े होकर सारनाथ के तक्षक उस समय भी अपनी स्थापत्यकला (lithic art) के कौशल का अच्छा परिचय देते रहे: ईस्वी सन् के प्रारम्भ में उत्तरी भारत में कुषाण-वंशी सम्राटों का बोल-बाला हुआ। उस समय उत्तर-पश्चिमी भारत में गान्धार तथा मध्य भारत में मथुरा स्थापत्यकला के प्रधान केन्द्र थे। इस युग की कला के लिये श्रावस्ती, कुशीनगर, सांची, कौशाम्बी आदि की भांति सारनाथ भी मथुरा का ऋणी है। कारण बुद्ध की प्रथम मूर्तियां इन्हीं मथुरा के शिल्पियों की कृतियां हैं और इन्हीं के आधार पर सारनाथ के तक्षकों ने बुद्ध प्रतिमायें गढ़ीं।

चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में जब आर्य्यावर्त्त में गुप्त साम्राज्य स्थापित हुआ, उसी समय से सारनाथ के भाग्य ने पुनः पलटा खाया। जो चोटी का स्थान कुषाण-काल में मथुरा ने प्राप्त किया था गुप्तकाल में वही

स्थान सारनाथ ने पाया, तथा इस युग के लिये उत्तरी भारत में कई सौ वर्षों तक प्रस्तरकला का प्रधान क्षेत्र बना रहा। इसी युग में बौद्ध धर्म में एक नये संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें ध्यानीबुद्ध, बोधिसत्व तथा अन्य बहुत से देवी-देवताओं की कल्पना की गयी। सारनाथ की कला में इस नवीन संप्रदाय की मूर्तियों का एक विशेष स्थान है। आठवीं शताब्दी के अन्त तक बौद्ध धर्म के अन्तर्गत वज्रयान संप्रदाय अपने पूरे विकास को पहुंच गया था। यद्यपि वज्रयान भिक्षुओं का प्रधान केन्द्र नालन्दा था तथापि सारनाथ उसके प्रभाव से अछूता न बच सका।

मध्यकाल की एक विशेषता पौराणिक हिन्दू धर्म का अभ्युदय था और सारनाथ में उक्त धर्म की भी कुछ अच्छी मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। सारनाथ के सन्ध्या-काल का सर्व-श्रेष्ठ स्मृति-चिन्ह कन्नौज के राजा गोविन्द-चन्द्र की रानी कुमारदेवी का एक शिला-लेख है जिसमें उसके एक बहुत बड़े विहार बनवाने का उल्लेख है। इसके बाद मुसलमानी शासन के प्रारंभ में यह स्थान ध्वंसानलजन्य-भीषण-अन्धकारगह्वर में फंस विस्मृति में जा पड़ा। तब से सात सौ वर्षों तक किसी ने इसकी सुध न ली। सौभाग्य से उन्नीसवीं शताब्दी से पुरातत्व-संबंधी खुदाई के सिलसिले से सारनाथ के प्राचीन वैभव

की ओर जनता तथा सरकार का ध्यान गया। उन सब खुदाइयों से प्राप्त सामग्री स्थानीय संग्रहालय में संचित है जिसकी गणना आज भारत के प्रमुख संग्रहालयों में की जाती है।

यों तो व्यक्तिगत रीति से सुदूर लङ्का, ब्रह्मा, आदि देशों के बहुत से यात्री सारनाथ को अपना तीर्थ समझ कर यहां आते रहे, परन्तु सामूहिक रीति से मृगदाव क्षेत्र के प्राचीन गौरव को पुनः उज्जीवित करने का कार्य बौद्ध जगत् की ओर से नया ही शुरू हुआ है। इस जगह महाबोधि सोसायटी ने एक सुन्दर विहार बनवाया है, जिसके साथ सहयोग प्रदर्शित करने के लिये भारत सरकार ने प्राचीन स्तूपों से प्राप्त बुद्ध के तीन अस्थ्यवशेष इस विहार में स्थापित करने के लिये उक्त सोसायटी को प्रदान किये हैं। बौद्ध साहित्य और इतिहास की ओर बढ़ती हुई रुचि को फैलाने के लिये सारनाथ भारतवर्ष का अब प्रधान केन्द्र हो गया है। आशा है कि कालान्तर में पुरातत्व विभाग इस प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान पर पुनः खुदाई का काम जारी करेगा तथा इसके भूगर्भ में दबी अन्य मूल्यवान् सामग्री को प्रकाश में लाकर इस स्थान का महत्व और भी बढ़ायेगा।

प्रस्तुत पुस्तिका में इस अवतरणिका के अनन्तर क्रमशः १-इतिहास, २-इमारतें और ३-अजायबघर शीर्षक

अध्यायों में संक्षेप में स्थानीय विशेषताओं का परिचय कराने का प्रयत्न किया गया है। विस्तृत टीका टिप्पणियां अथवा वादग्रस्त आलोचनायें स्थानाभाव के कारण यहां उद्देश्यतः नहीं की गयी हैं। इनके लिये जिज्ञासु छात्र, विद्वान् एवं आगन्तुक लोग उन ग्रन्थों को देखें जिनमें सारनाथ का वर्णन विस्तार में दिया है।

अन्त में मैं उन विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं जिनके इस विषय पर लिखित ग्रन्थों का मैंने इस पुस्तिका के लिखने में बहुधा उपयोग किया है। साथ ही अपने प्रिय मित्र श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल एम. ए. के प्रति भी जिन्होंने कृपा पूर्वक इस पुस्तिका की हस्तलिखित प्रतिलिपि को पढ़ कर उसमें कई स्थान पर मूल्यवान् संशोधन किये तथा इस अवतरणिका के लिखने में मुझे सहायता पहुंचायी।

कर्ज़न म्यूज़ियम,
मथुरा।

मदन मोहन नागर।

१—इतिहास ।

बौद्ध धर्म का उत्थान ।

सारनाथ के महत्व को अच्छी तरह समझने के लिये उसके पूर्व इतिहास पर एक नज़र डालनी ज़रूरी है। ईसा से पूर्व छठीं शताब्दी में उत्तरी भारत की धार्मिक तथा राजनैतिक हालत बड़ी ही उथल-पुथलमय थी। कोई एक बड़ा राजतन्त्र न होने से कई छोटे छोटे गण राज्य स्थापित हो गये थे। इनके आपस में लड़ने झगड़ने के कारण कभी एक स्थान राजनैतिक बल का केन्द्र बनता था तो कभी दूसरा। इधर धार्मिक स्थिति यह थी कि केवल ब्राह्मणों का ही बोल-बाला था। अनेक प्रकार के बलि-प्रधान-यज्ञों की प्रचण्ड व्याप्ति से जनसाधारण की आत्मायें विचलित हो उठीं थीं। लोगों का विश्वास उस समय के वैदिक धर्म में कम होता जा रहा था और उनमें भीतर ही भीतर विक्षोभ की ज्वाला घर कर रही थी।

ऐसे समय में नेपाल की तराई में शाक्यकुल में कुमार सिद्धार्थ नाम के उस बालक ने जन्म लिया, जो अपने जीवन के ३४वें वर्ष में कठिन तपश्चर्या के बाद, बोधगया में बोधिमण्ड आसन पर दुःखनिरोध के सच्चे

मार्ग का ज्ञान पाकर, गौतम बुद्ध के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। उस महापुरुष ने इसी सारनाथ स्थान में अपने पूर्व साथी अज्ञात कौण्डिञ्ञ आदि पञ्चभद्रवर्गीय भिक्षुओं को धर्मचक्रप्रवर्तनसूत्र नामक सर्व-प्रथम उप-देश सुनाया और निर्वाण का मार्ग बताया। यहीं से बौद्ध धर्म की तथा इस स्थान के इतिहास की नींव पड़ी।

राजनैतिक इतिहास।

काशी के लगभग ५ मील उत्तर की ओर स्थित सार-नाथ के भग्नावशेष प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में 'ऋषिपतन' या 'मृगदाव' के नाम से विख्यात हैं। ईस्वी सन् की ५वीं शताब्दी में भारत यात्रा के लिये आये हुए इतिहास प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने प्रथम नाम 'ऋषिपतन' का अर्थ 'ऋषि का पतन' बतलाया है जिसका आशय है वह स्थान जहां किसी एक प्रत्येक बुद्ध ने गौतम बुद्ध की भावी संबोधि को जान कर निर्वाण प्राप्त किया।* दूसरा नाम 'मृगदाव' निग्रोध-मृग जातक † के आधार पर इस प्रकार है :—

किसी एक पूर्व जन्म में गौतम बुद्ध और उनके भाई देवदत्त इसी सारनाथ के पूर्व कालीन बड़े जंगल में मृगों के एक एक बड़े झुण्ड के मालिक होकर घूमते थे।

* साहनी: गाइड टू बुद्धिस्ट रुइन्स ऐट सारनाथ; पांचवां संस्करण; पृ० १।

† फ़ौसबौल द्वारा संकलित जातक कथायें नं० १२।

उस समय काशी नरेश इस बन में प्रायः हरिणों का शिकार करने आते थे। अपने बान्धवों का ऐसा नृशंस संहार हरिणराज बोधिसत्व से न देखा गया और उन्होंने काशी नरेश से मुलाक़ात कर यह समझौता किया कि प्रत्येक झुण्ड में से एक एक मृग बारी बारी से रोज़ अपने आप उनके पास जाता रहेगा और वे शिकार करने बन में न आयेंगे। यह क्रम कुछ समय तक निर्बाध चलता रहा। पर संयोग से एक दिन देवदत्त के झुण्ड की एक गर्भिणी मृगी की बारी आयी जिसने यह इच्छा प्रकट की कि उसके गर्भ की किसी प्रकार से रक्षा अवश्य की जाय। दयामूर्ति बोधिसत्व इस विनीत वचन पर द्रवित हो, उस मृगी के स्थान पर खुद ही, काशी के राजा की सेवा में बध के लिये जा उपस्थित हुए। राजा उन्हें देख अचम्भित हुए और गर्भिणी मृगी का सारा वृत्तान्त सुन कर तो खुद भी दयालुता से पानी पानी हो गये। उन्होंने हिरणराज बोधिसत्व से यह कह कर कि "मनुष्य के रूप में होते हुए भी वस्तुतः मृग मैं हूं और आप मृग के रूप में होते हुए भी मनुष्य हैं" प्रतिज्ञा की कि वे अब से इस हिंस्र व्यापार में कभी हाथ न डालेंगे। उन्होंने उक्त बन मृगों को बेखटके घूमने के लिये उसी वक्त छोड़ दिया। इसी लिये इस बन का नाम 'मृगदाव' पड़ गया।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एवं पुरातत्वज्ञ श्री कनिंघम के मतानुसार आधुनिक नाम 'सारनाथ' की उत्पत्ति 'सारङ्गनाथ' (मृगों के नाथ यानी गौतम बुद्ध) से ही हुई है। पुरातत्व विभाग की खुदाई में जितने भी शिलालेख यहां से पाये गये हैं उनमें इस जगह का नाम 'धर्मचक्र' या 'सद्धर्मचक्रप्रवर्तन विहार' ही मिलता है। जान पड़ता है कि यहां के बौद्ध विहारों के लिये इसी नाम का इस्तेमाल होता था।

बुद्ध के प्रथम उपदेश के समय (c. B.c. 533) से लग-भग ३०० वर्ष बाद तक के सारनाथ के इतिहास का कुछ भी पता नहीं है। कारण, इस मध्यवर्ती काल के कोई भी स्मारक यहां से नहीं मिले हैं। संभव है कि उस समय के बौद्ध भिक्षु भी और धर्म के साधुओं की नाईं सिर्फ़ पर्णकुटियों से ही काम चलाते रहे हों। बुद्ध की मूर्तियां तो उस समय तक बनी नहीं थीं और इसी वजह से अभी बौद्ध मंदिरों की भी कोई स्थापना नहीं हुई।

सब से पुराने बौद्ध स्मारक (relics) जो भारत में अब तक मिले हैं वे मौर्य्यवंशी सम्राट् अशोक के हैं। कलिंग की लड़ाई के भीषण संहार और रक्तपात से द्रवित हो-कर इस महापुरुष ने शीघ्र ही पाशविकबल को धर्मबल, भेरिघोष को धर्मघोष और विहारयात्रा को धर्मयात्रा से बदला। साथ ही अपने आध्यात्मिक गुरू उपगुप्त से

बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर इसे राजधर्म बनाया। इस काल के चार स्मारक अब तक सारनाथ में मिले हैं। एक है 'अशोकस्तम्भ' जो यहां के मुख्य-मन्दिर के पश्चिम की ओर अब भी अपने पहिले वाली जगह पर टूटा खड़ा है। दूसरा है इस स्तम्भ से दक्षिण की ओर स्थित 'धर्मराजिका-स्तूप' जिसकी नींव का निशान आज भी एक गोल चक्कर के रूप में दिखायी देता है। तीसरा है मुख्य-मन्दिर के दक्षिण गर्भ में रखी हुई एक ही पत्थर में काट कर बनायी हुई चहारदीवारी, जो शुरू में 'धर्मराजिका स्तूप' के ऊपर हर्मिका शिखर को घेरे हुए थी। जान पड़ता है कि किसी दुर्घटनावश वहां से गिर जाने के बाद किसी धार्मिक उपासक ने इसे अपने मौजूदा जगह पर रख दिया। इनके अलावा अशोक के वक्त का यहां एक गोल मन्दिर (apsidal temple) भी था जिसकी बनावट कार्ली या ईसा युग से पूर्व के दूसरे चैत्यगृहों की बनावट से मिलती जुलती थी।

अशोक के जीवनकाल में बौद्ध धर्म की खूब उन्नति हुई। पर उसके उत्तराधिकारी उसकी बराबरी के न निकले। न तो वे अपने इतने बड़े राज्य को ही संभाल सके और न बौद्ध धर्म की ही उन्नति कर सके। यहां तक कि इस वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ मौर्य को उसके सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग ने मार कर मगध के सिंहासन

को ईस्वी पूर्व १८५ के लगभग अपने कब्ज़े में कर लिया। पुष्यमित्र ने ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन दिया और वैदिक कर्मकाण्ड के पुनरुद्धार के लिये अश्वमेधयज्ञ किये। यद्यपि शुङ्ग राजाओं से साक्षात् संबंध रखने वाली कोई भी इमारत अब तक सारनाथ में नहीं मिली है फिर भी उस वक्त की कला के क़रीब ३०० नमूने औ हारशोच्स की यहां की खुदाई में मिले जिनसे मालूम होता है कि शुङ्गकाल में सारनाथ तरक्की की हालत में था।

यद्यपि ईसा से पूर्व की पहली शताब्दी में मध्य और उत्तर भारत की सब से मशहूर और ताक़तवर जाति आन्ध्रों की थी पर उनके समय का यहां कोई शिला-लेख आदि नहीं मिला जिससे उस समय को लेकर सारनाथ के इतिहास के बारे में कुछ कहा जा सके। परन्तु धर्मराजिका-स्तूप के पास के गढ़े से मिली हुई एक विशाल-काय बोधिसत्व मूर्ति से [चित्र २ (i)], जिस पर कनिष्क के तीसरे राज्य संवत्सर का एक लेख है, इस बात का पक्का पता चलता है कि ईस्वी सन् ८१ में सार-नाथ कुषाणवंश के परम प्रतापी सम्राट् कनिष्क के आधीन था। वे बौद्ध धर्म की महायान शाखा के अनु-यायी हो गये थे और कुछ विद्वानों का यह विचार है कि कनिष्क के ही समय में पहिले पहिले बुद्ध की

मूर्तियों का बनना शुरू हुआ। बुद्ध-चरित और सौन्दरानन्द नाम के काव्यों के प्रसिद्ध लेखक श्री अश्वघोष और बौद्ध धर्म में महायान संप्रदाय के आदिप्रवर्तक श्री वसुमित्र—ये दोनों विद्वान् भी कनिष्क के ही समकालीन थे। इनके शासनकाल में बौद्ध कला और धर्म को बड़ी तरक्की हुई और न केवल सारनाथ में वरन् उत्तरी भारत के विभिन्न भागों में भी इनकी राजकीय छत्रछाया के नीचे बहुत से विहार और स्तूप बने।

किन्तु, सारनाथ के इतिहास में सबसे गौरवपूर्ण समय गुप्तकाल में आता है जब कि ईस्वी सन् की चौथी और पांचवीं शती में उत्तरी भारत पर गुप्तवंश का एकछत्र साम्राज्य कायम हुआ। इस युग में कला, शिल्प, व्यवसाय, वाणिज्य, उद्योग, धर्म, साहित्य, विज्ञान आदि सभी दिशाओं में सभ्यता की परम उन्नति हुई जिसकी वजह से सचमुच गुप्त-युग को भारतीय इतिहास का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। इस स्वर्ण-युग की बढ़ी चढ़ी कारीगरी की पूरी पूरी छाप सारनाथ की कला में दिखाई पड़ती है। यहां तक कि इस युग के लिये सारनाथ उत्तरी भारत में एक प्रकार से स्थापत्य शिल्प का एक प्रधान केन्द्र (centre) होगया था। इस समय के शिल्प के नमूनों में ऐतिहासिक दृष्टि से चार मूर्तियां खास तौर पर ज़िक्र करने लायक़ हैं जिनमें एक [B(b) 175]

खुद सम्राट् कुमारगुप्त [प्रथम ?] [४१३—४५५ ई० सन्] ने चढ़ाई थी और बाकी तीन [E२२, ३९—४०] भिक्षु अभयमित्र द्वारा कुमारगुप्त द्वितीय (४७२—४७७ ई० सम्वत्) और बुधगुप्त (४७८—५०० ई० सम्वत्) के राजकाल में प्रतिष्ठापित की गयी थीं।

परन्तु बदकिस्मती से सभ्यता के इस स्पृहणीय विकास पर ५वीं शताब्दी में हूंणों का वज्रपात हुआ। मध्य एशिया के रहने वाले जंगली हूंणों ने अपने नायक तोरमाण और मिहिरकुल के संचालन में सारे उत्तरी भारत को खूँद डाला और शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया। सारनाथ को भी इन आक्रमण-कारी हूंणों की ध्वंसलीला का शिकार होना पड़ा। कारण कि हूंण लोग बौद्ध धर्म के ख़ास तौर से शत्रु थे। इस बात का समर्थन प्रारम्भिक गुप्तकाल की उन बहुत सी मूर्तियों से होता है जो एक कमरे में बेतरह ठूँसी और जलायी हालत में मिली थीं। पर खुशकिस्मती से लूटपाट की यह हालत ज्यादा वक़्त तक न टिक सकी और ईस्वी सन् ५३० में बालादित्य और यशोधर्मा नामक राजाओं के नेतृत्व में उस समय के नरेशों के संघ द्वारा मिहिरकुल बिलकुल परास्त कर भारत से निकाल दिया गया।

इसके कुछ ही काल बाद मौखरी और वर्द्धनों का प्राधान्य हुआ और वे उत्तरी भारत में शक्तिशाली हुए। इस काल के भी यद्यपि कोई लिखे हुए प्रमाण सारनाथ से नहीं मिले हैं तथापि पाये गये चिन्हों से भली भांति ज़ाहिर होता है कि इन नरेशों के राज्य-काल में सारनाथ फिर अपनी पुरानी चोटी की जगह पर पहुंच गया था। इसके सिवाय एक दूसरा बड़ा सबूत प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्सांग का है जिसने (६२९—६४५ ई० स०) उत्तरी भारत के धार्मिक जगहों की यात्रा की थी। उसने अपने भ्रमणवृत्तान्त (सफ़रनामा) में सारनाथ को बहुत ही ख़ुशहाल हालत में वर्तमान और कन्नौज के राजा के आधीन बतलाया था। यह राजा हर्ष (६०६—६४७ ई० सं०) के सिवाय और कोई न होंगे। इसके बाद की आधी शताब्दी का इतिहास फिर अन्धकार में रहता है जब कि आठवीं शताब्दी के शुरू में काश्मीर नरेश ललितादित्य द्वारा कन्नौज के राजा यशोवर्म्मा के हराये जाने की घटना सामने आती हैं। इस समय राजनैतिक अशान्ति और अव्यवस्था में प्रतीहार, राष्ट्रकूट और पाल वशंज नरेश आर्यावर्त्त पर अपना प्राधान्य स्थापित करने की होड़ में परस्पर भीषण संग्राम में संलग्न हो पड़े थे। ९वीं शताब्दी के मध्य में कन्नौज के राज्यासन पर प्रतीहारवंशी नरेश मिहिरभोज (आदिवराह) पचास वर्ष तक आसीन रहे और उनके उत्तराधिकारी भी

१०१८—१९ ई० स० तक कन्नौज पर राज्य करते रहे जब कि सुलतान महमूद ग़ज़नी ने भारतवर्ष पर धावा किया।

इन प्रतीहारवंशी नरेशों के समय का भी कोई स्मारक सारनाथ में अभी तक नहीं पाया गया है। अलबत्ता, पालवंशज नरेशों के समय की कई मूर्तियाँ यहाँ खुदायी में निकली हैं। इनमें सब से अधिक महत्व की एक बुद्ध मूर्त्ति की लेखयुक्त चरणचौकी* (चित्र७) है जो संवत् १०८३ (ई० स० १०२६) की है। इसमें यह लिखा है कि महीपाल (९९२-१०४० ई० स०) के शासनकाल में स्थिरपाल और वसंतपाल नाम के दो भाइयों ने धर्मराजिका (अशोक स्तूप) का जीर्णोद्धार कराया और बुद्ध की यह मूर्त्ति बनवायी। इस से यह सिद्ध हो जाता है कि ईस्वी सन् १०२६ में सारनाथ पाल नरेशों की राज्य-सीमा में था।

कहा जाता है कि मध्य भारत पर साम्राज्यसत्ता जमाने के वास्ते महीपाल को त्रिपुरी के गांगेयदेव कलचुरी (१०३०—१०४१ ई० स०) के साथ एक लम्बी लड़ाई में उलझना पड़ा था और सम्भवतः इस संबंध के आक्रमणों में एक बार विजय गांगेयदेव के भी पक्ष में रही। क्योंकि गांगेयदेव के पुत्र

* साहनी: सारनाथ म्यूज़ियम सूचीपत्र B(c)

कर्णदेव (१०४१—१०७० ई० स०) के समय का (ई० स० १०५८) पत्थर के आठ टुकड़ों पर देवनागरी में खुदा हुआ अशुद्ध संस्कृत का एक शिलालेख* धमेक स्तूप के पास से पाया गया है जिसके आशय से यह विदित होता है कि ११वीं शती में सारनाथ कलचुरी साम्राज्य में शामिल होगया था।

अधिकार परिवर्तन के इस सिलसिले में सब से अंतिम और समाप्त के जिस वंश ने सारनाथ पर कब्ज़ा जमाया वह कन्नौज के गहड़वालों का था। खुदायी में पाये गये एक शिलालेख † से पता चलता है कि गोविन्दचन्द्र (ई० स० १११४—११५४) की बौद्ध रानी कुमारदेवी ने दक्षिण भारतीय गोपुरों की चाल का यहां एक बड़ा विहार बनवाया था जिसका नाम सद्धर्मचक्रजिनविहार रक्खा गया था। उनके पौत्र जयचन्द्र सन् ११९३ में मुहम्मद-बिन-साम से पराजित हुए और मारे गये। उसी समय उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने काशी नगर पर भी छापा मारा और अनेकों मन्दिरों को तोड़ा। इस लिये मुमकिन है कि सारनाथ के विहारों और मन्दिरों को भी उसी ने ही तोड़ा हो।

खुदाई का इतिहास।

सारनाथ में विहारों की आबादी १२वीं शताब्दी के अन्त तक यथावत् क़ायम रही जब कि सन् ११९४ में

---

* साहनी: सारनाथ म्यूज़ियम सूचीपत्र [D(l) 8].

† [D(l) 9.]

कुतुबुद्दीन ने हमला करके बनारस के राजा जयचन्द्र को हराया और बहुत बड़ी संख्या में मन्दिर तथा मूर्त्तियां तोड़ीं। खुदाई करते वक्त इमारतों को बची खुची टूटन जिस हालत में ज़मीन के भीतर से मिली है उनसे साफ़ मालूम पड़ता है कि सारनाथ के नाश होने का सबब लूट-मार और अग्निकाण्ड था। इमारतों के जो हिस्से ऐसी दुर्घटना के बाद भी बच रहे थे वे खुद ही गिर गिर कर अपने मलबे के नीचे दबते गये। इस प्रकार ज़मीन की सतह से ऊपर सिवाय दो स्तूपों के और एक उस ढूह के कुछ बाकी नहीं बचा जो खास सारनाथ से आधी मील दूर बसा है और जिसे गांव वाले चौखण्डी के नाम से पुकारते हैं। उपासना स्थल के रूप में 'मृगदाव' का अस्तित्व ही मिट गया और वह सर्वथा अन्धकार में विलीन होगया।

संयोग से सन् १७९४ में सारनाथ के ऐतिहासिक महत्व का परिचय पुरातत्व-संसार को पुनः तब प्राप्त हुआ जब काशीनरेश श्री चेतसिंह के दीवान श्री जगत्सिंह ने अपने मज़दूरों से यहां की बची खुची इमारतों को खुदवाया। ये मज़दूर काशी के मौजूदा जगत्गञ्ज बाज़ार को बनाने के लिये अशोक-स्तूप को खन कर ईंट पत्थर लाने को भेजे गये थे। उस समय उन्हें खुदाई में जो स्मारक मिले उनसे सारनाथ के खंडहरों के बारे

में व्यापक आकर्षण उत्पन्न होगया और व्यक्तिशः तथा पुरातत्वज्ञों द्वारा वहां पर खुदाई और मूर्ति-संग्रह का सिलसिला चल पड़ा।

सब से पहिले व्यवस्थित रीति से खुदाई का काम श्री कनिंघम ने सन् १८३६ में शुरू किया। उन्होंने बहुत कुछ अपने पास से खर्च करके धमेक स्तूप, चौखण्डी टूह और एक मध्यकालीन विहार (नं० ६) के कुछ हिस्सों को निकलवाया। इसके अतिरिक्त उन्हें यहां से कुछ मूर्तियां भी मिलीं जो अब कलकत्ते के अजायबघर में रखी हैं। इसके बाद मेजर किटो ने कई स्तूप और एक विहार (नं० ५) निकलवाया जिसे उन्होंने अस्पताल ठहराया था, हाला कि बाद को खुदाइयों के आधार पर यह कल्पना ग़लत साबित हुई है। सन् १९०१ में पुरातत्व-विभाग के क़ायम हो जाने पर सारनाथ में खुदाई का काम और भी सुव्यवस्थित और व्यापक रूप से चला तथा जो लोग यहां के भूगर्भस्थ गौरव को प्रकाश में लाने में मुख्यतः सहायक हुए उनमें श्रीयुत् ओर्टेल, डा० स्टेन कोनो, सर जॉन मार्शल, श्री हारग्रीव्स और राय बहादुर दयाराम साहनी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

धार्मिक इतिहास।

प्राप्त शिलालेखों और मूर्तियों से सारनाथ का धार्मिक इतिहास भी संकलित किया जा सकता है।

मौर्य्यकाल की चहारदीवारी (railings) पर खुदे हुए प्रारम्भिक काल के तीन लेखों से पता चलता है कि ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के क़रीब यहां प्राचीन थेरवाद शाखा के सर्व्वास्तिवादी संप्रदाय के भिक्षुओं का प्राधान्य था। इन्हीं तीनों में से एक लेख से यह भी पता चलता है कि इससे पहिले सारनाथ किसी दूसरे वर्ग के अधिकार में था जिसका नाम उक्त लेख में जान बूझ कर मिटा दिया गया था। सर्व्वास्तिवादी भिक्षुओं का ज़ोर अधिक दिनों तक नहीं रहा क्योंकि अशोक-स्तम्भ पर लगभग चौथी शताब्दी का एक लेख है जिससे मालूम होता है कि पूर्व गुप्त-युग में सारनाथ पर सम्मितीय शाखा के भिक्षुओं का आधिपत्य होगया था। इन सम्मितीय आचार्य्यों ने अपने आपको बौद्धों की प्राचीन वात्सीपुत्रीय शाखा का अनुयायी बताया है। इनकी अधिकारसत्ता दीर्घ काल तक रही कारण सातवीं शताब्दी में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्सांग ने सारनाथ की यात्रा की थी उस समय भी इन्हीं लोगों का यहां कब्ज़ा था। लेकिन इसके थोड़े ही काल के बाद यह कट्टर वर्ग कमज़ोर पड़ गया और थानेश्वर के राजा हर्ष की छत्रछाया में महायान नामक बौद्धों की नयी शाखा ने अपना प्रभाव जमाया। इसका प्रमाण सारनाथ की खुदाई में निकली हुई महायान संप्रदाय के देवी-देवताओं की बहुत सी मूर्तियां हैं। कहा जाता है कि आठवीं शताब्दी के

आखीर में श्री शंकराचार्य ने उस समय में मौजूद बौद्ध धर्म के खिलाफ़ आवाज़ उठायी और हिन्दू धर्म का सिक्का जमाने के आन्दोलन को आगे बढ़ाया। संभवतः, सारनाथ जैसे बौद्ध केन्द्र में भी कुछ लोगों को इसी वख़्त से हिन्दू मूर्तियों की ज़रूरत पड़ी। इसके फलस्वरूप यहां से क़रीब पचास हिन्दू (पौराणिक) देवीदेवताओं की मूर्तियां मिली हैं जिनमें अन्धकासुर का बध करते हुए शिव की विशाल मूर्ति* [चित्र ३ (ii)] विशेष आकर्षक तथा उल्लेखनीय है।

सारनाथ के धार्मिक इतिहास के अन्तिम काल में वज्रयान नामक तान्त्रिक वर्ग के लोगों ने खास तौर से अपना प्रभुत्व जमाया और लगातार आने जाने का संबंध रहने के कारण तिब्बत तथा चीन के लोग भी यहां की धार्मिक व्यवस्था को प्रभावित करने में समर्थ हुए। यही कारण है कि वज्रयान संप्रदाय के देवी देवताओं की अनेक विलक्षण मूर्तियां हमको यहां से खुदाई में मिली हैं जिनके जोड़ की प्रतिमाएं नेपाल तथा तिब्बत प्रदेश में बहुत प्रचुरता से देखने को मिलती हैं।

---

* साहनी: सारनाथ म्यूजियम सूचीपत्र [B(h) 1].

रही हैं। इस विहार का प्रवेश-द्वार बीचोबीच उत्तर की ओर था। उसके समीप ही बाहर की ओर निकली हुई तीन कोठरियां हैं जिनमें बीच वाली मुख-भद्र (portico) और अगल-बगल वाली प्रतिहार-कक्ष (guards-rooms) थीं। मेजर किटो की खुदाई में जिस विहार की बुनियादें मिली हैं वह मध्यकाल का है। उसके नीचे गुप्त और कुषाण काल के भी वैसे ही विहार थे जैसा कि उसमें से मिली हुई मिट्टी की मुहरों (seals) और ईंटों से मालूम हुआ है। विहार की दीवालों की मोटाई से प्रकट होता है कि इसकी ऊंचाई तीन चार मरातिब से कम न थी।

विहार नं० ७।

ऊपर लिखे विहार के पश्चिम की ओर प्रायः उसी के ऐसे एक दूसरे विहार के खंडहर मिले हैं। यह विहार लगभग ८वीं शताब्दी का होगा। अनुमान है कि इसके भी नीचे किसी पहिले वाले विहार के खंडहर दबे पड़े होंगे। इस विहार के आगे की दीवालों और पक्के फ़र्श के बरामदों को छोड़ कर बाक़ी सब निशान ग़ायब हो गये हैं। जान पड़ता है कि ६ और ७ नं० वाले दोनों विहार किसी आक्रमणकारी द्वारा लगायी गयी आग से नष्ट हुए हैं।

धर्मराजिका-स्तूप।

थोड़ी दूर उत्तर की ओर चल कर दर्शकों को 'धर्म-राजिका-स्तूप' के खंडहर मिलेंगे। सन् १७९४ ई० में

बाबू जगत्सिंह के आदमी इस स्तूप को गिरा कर उसके मलबे को यहां से हटा कर ले गये तथा उन्होंने उसके गर्भ में पायी गयी एक हरी सेलखड़ी की पेटी में रखे हुए बुद्ध के धातु या शरीर-चिन्हों को गंगा जी में फेंक दिया। सन् १८३५ ई० में श्री कनिंघम को इस स्तूप को दुबारा खुदाई में पत्थर का एक और बकस मिला जिसमें ऊपर लिखी सेलखड़ी वाली पेटी किसी समय रखी थी। उसे उन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी को दान दे दिया और वह अब कलकत्ते के अजायबघर में सुरक्षित है।

जगत्सिंह द्वारा बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट किये जाने के बाद भी सन् १६०७-०८ में सर जॉन मार्शल ने इस स्तूप के तल में जो खुदाई की उससे उसके क्रमिक परिनिर्माणों (chronological reconstructions) का इतिहास पूरा पूरा मालूम हो सका है। मूल स्तूप को सब से पहिले सम्राट् अशोक ने बनवाया था। उसकी सब से पहिली मरम्मत कुषाणकाल में हुई। दुबारा मरम्मत प्रायः हूणों के हमले के थोड़े ही दिन बाद ६ठीं शताब्दी में हुई। इस समय इसके चारों ओर १६ फुट चौड़ा एक प्रदक्षिणा-पथ (circumambulatory passage) बढ़ाया गया। ऐसा मालूम पड़ता है कि ७वीं शताब्दी के करीब स्तूप के गिरने का कुछ डर

हो गया था जिससे उसकी मज़बूती के लिये चारो तरफ़ के प्रदक्षिणापथ को ईंटों से भर कर स्तूप को कमर में एक पेटी सी कस दी गयी। इस समय स्तूप के पास जाने के लिये एक पत्थर में से काट कर बनी हुई सात डंडों वाली एक एक सीढ़ी चारों दिशाओं में लगायी गयी। चौथा पुनर्निर्माण सन् १०२६ में बंगाल नरेश महीपाल द्वारा हुआ जब कि महमूद ग़ज़नी के बनारस वाले हमले को कुल नौ या दस वर्ष बीते थे। अन्तिम पुनरुद्धार लगभग सन् ११९४ में हुआ जो रानी कुमारदेवी के धर्मचक्रजिनविहार-निर्माण का समकालीन रहा होगा। इस पवित्र स्तूप के चारो ओर जो अन्य छोटे-मोटे अनेकों ढांचे पाये जाते हैं वे मध्य-कालीन यात्रियों की इस जगह की यात्रा को जताने वाले निशान हैं।

मुख्य-मन्दिर।

धर्मराजिका-स्तूप से थोड़ी ही दूर पर उत्तर की ओर एक मन्दिर के निशान मिलते हैं जो ऊंचाई में करीब २० या २२ फुट हैं। ये खंडहर मृगदाव के बीचोबीच बसे हुए उस विशाल प्रासाद के हैं जो यहां का मुख्य-मन्दिर (Main Shrine) गिना जाता था। इसे ७वीं सदी में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्सांग ने देखा था और अपने भ्रमण-वृत्तान्त में स्वर्ण सदृश चमकीले आम्र-शिखर से सुशोभित २०० फुट ऊंची मूलगन्धकुटी के नाम से लिखा है। इस मन्दिर का निर्माण गुप्त-काल

में हुआ था जैसा कि इस पर बने हुए नक्काशीदार गोले (convex mouldings) और गलतों (concave mouldings), पूर्णघटों से निकलते हुए छोटे छोटे स्तम्भों तथा अन्य अन्य उस समय के सुन्दर व कलापूर्ण कटावों आदि से निश्चय प्रकट होता है। फिर भी कुछ विद्वानों ने इसके चारों ओर गिट्टी और चूने के बने हुए मध्य-कालीन पक्के फ़र्श तथा दीवारों के बाहरी निचले भागमें विभिन्न काल के बेतरतीबी से लगे हुए सादे व नक्काशीदार पत्थरों के अधार पर इसे ८वीं शताब्दी के लगभग का माना है। इस मन्दिर के भीतर बीच में बने मण्डप के नीचे शुरू में भगवान् बुद्ध की एक सोने की सी चमकवाली कायपरिमाण (आदमक़द-life size) मूर्ति स्थापित थी। मन्दिर में घुसने के वास्ते तीनों दिशाओं में एक एक द्वार और पूर्व दिशा में सिंह-द्वार (main entrance) था जिससे पूजा करने वाले मूर्ति के दर्शन और परिक्रमा के लिये अपनी सुविधा के मुताबिक किसी भी द्वार से आ जा सकते थे। कुछ समय के बाद जब मन्दिर की छतें कुछ कमज़ोर होगयीं तो उनके हिफ़ाजत के लिये भीतरी प्रदक्षिणापथ मोटी मोटी दीवालें उठा कर बंद कर दिया गया और आने जाने का रास्ता केवल पूर्व के सिंहद्वार से रह गया। तीनों दरवाज़ों के बंद होने से तीन तरफ़ कोठरियां जैसी बन गयीं जिन्हें छोटे मन्दिरों का रूप दे दिया गया। इन्हीं

में से दक्षिण दिशा वाली कोठरी में श्री ओर्टेल को एक ही पत्थर से काट कर बनाई हुई ८$\frac{1}{3}$×८$\frac{1}{3}$ फुट की मौर्यकालीन वेदिका (railings) मिली जिस पर उस समय की अत्यन्त चमकदार पालिश है। यह वेदिका शुरू में धर्मराजिका-स्तूप के ऊपर हर्मिका के चारो ओर लगी थी किन्तु अब इसके बीच में ज़मीन पर ही एक छोटा सा स्तूप बना हुआ है। यह वेदिका मौर्य-कालीन कारीगरी का एक बहुत अच्छा नमूना है। वेदिका पर कुषाणकालीन ब्राह्मी में दो लेख खुदे हैं: पहिला 'आचाया(र्य्या)नां सर्वास्तिवादिनां परिगहेतावम्' और दूसरा 'आचार्यानां सर्वास्तिवादिनां परिग्राहे'। दोनों लेखों से मालूम पड़ता है कि ईसा की ३री शताब्दी के लगभग यह वेदिका सर्वास्तिवादी संप्रदाय के आचार्य्यों को भेंट की गयी थी।

अशोक-स्तम्भ।

मुख्य-मन्दिर से पश्चिम की ओर एक बहुत चमकते हुए शिला-स्तम्भ का निचला भाग खड़ा है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इस वक्त इस खंभे की ऊंचाई सिर्फ़ ७ फुट ९ इंच है यद्यपि इसके पास में रखे हुए बाकी टुकड़ों से मालूम होता है कि शुरू में यह कम से कम ५५ फुट के क़रीब ऊंचा था। इसकी जड़ में खोद कर देखने से पता चला है कि इसकी स्थापना एक भारी पत्थर की चौकी पर हुई है जो नाप में ८'×६'×१$\frac{1}{3}$

है। यह खंभा चुनार के पत्थर का बना हुआ है। उसके हर एक हिस्से पर बहुत ही चमकीली पालिश की गयी है जिसमें शीशे की सी दमक के कारण कभी कभी संगमरमर का भ्रम होता है। खंभे पर पीछे की ओर साफ़ साफ़ ब्राह्मी लिपि में अशोक का मशहूर लेख खुदा हुआ है जिसकी भाषा उस समय की पाली है। उस राज-आज्ञा में भिक्षु और भिक्षुणियों को सारनाथ के भीतर 'संघ' में किसी भी तरह की फूट डालने के विरुद्ध चेतावनी दी गयी है। सारनाथ के शिल्प के नमूनों में अशोक-स्तम्भ बहुत ही महत्व का है इसलिये उस पर खुदे हुए मूल लेख की प्रतिलिपि और अनुवाद नीचे दिये जाते हैं।

मूल।

१. देवा[नंपियेपियदसि लाजा] . . . .

२. ए[ल]

३. पाट[लिपुते] . . . . ये केनपि संघे भेतवे[।] ए चुं खो

४. भिखू वा भिखुनी वा संघं भखति से ओदातानि दुसानि संवंधपयिया आनावासति

५. आवासियिये[।]हेवं इयं सासने भिखुसंघसि च भिखुनीसंघसि विंनपयितविये [।]

६. हेवं देवानं पिये आहा हेदिसा च एका लिपी तुफाकं हुवाति संसलनसि निखिता [।]

७. इकं च लिपिं हेदिसमेव आसकानंतिक निखिपाथ [।]तेपि च उपासका अनुपोसथं यावु

८. एतमेव सासनं विस्वं सयितवे [।] अनुपोसथं च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये

९. याति एतमेव सासनं विस्वं सयितवे अजानितवे च [।] आवतके च तुफाकं आहाले

१०. सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन [।] हेमेव सवेसु कोटविसवंसु एतेन

११. वियंजनेनं विवासापयाथा [।]

अनुवाद ।

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं कि पाटलिपुत्र तथा प्रान्तों में कोई संघ में फूट न डाले। जो कोई चाहे वह भिक्षु हो वा भिक्षुणी संघ में फूट डालेगा वह सफ़ेद कपड़े पहिना कर उस स्थान में भेज दिया जायगा जो भिक्षुओं वा भिक्षुणियों के लिये उचित नहीं है। इसी प्रकार हमारी यह राज-आज्ञा भिक्षु संघ और भिक्षुणी संघ को बता दी जाय। देवताओं के प्रिय

ऐसा कहते हैं: इस तरह का एक लेख आप लोगों के समीप भेजा गया है जिसमें कि आप लोग उसे याद रखें। ऐसा ही एक लेख आप लोग उपासकों के लिये भी लिख दें जिसमें कि वे हर उपोसथ के दिन आकर इस आज्ञा के मर्म को समझें। साल भर प्रत्येक उपोसथ के दिन हर एक महामात्र उपोसथ व्रत पालन करने के वास्ते इस आज्ञा के मर्म को समझाने तथा इसका प्रचार करने के लिये जायगा। जहाँ जहाँ आप लोगों का अधिकार हो वहां वहां आप सर्वत्र इस आज्ञा के अनुसार प्रचार करें। इसी प्रकार आप लोग सब कोटों और विषयों में भी इस आज्ञा को भेजें"।*

इसके अतिरिक्त अशोक-स्तम्भ पर दो और भी लेख खुदे हुए हैं। इनमें से एक अश्वघोष नाम के किसी राजा के शासनकाल का है और दूसरा जो लिखावट से चौथी शताब्दी का जान पड़ता है वात्सीपुत्रीक संप्रदाय की सम्मीतीय शाखा के गुरुओं द्वारा लिखवाया गया है।

मुख्य-मन्दिर के पश्चिम का क्षेत्र।

अशोक-स्तम्भ के पश्चिम में जो नीची ज़मीन है वह मौर्य-कालीन धरातल को सूचित करता है। यहीं से सन् १९१४-१५ में श्री हारग्रीव्स ने उत्तर मौर्य एवं

* जनार्दन भट्ट कृत अशोक के धर्मलेख, पृ० ३८२

शुङ्ग काल के बहुत से सुन्दर तथा उत्कृष्ट अवशेष खोद निकाले जिनमें मानव-मूर्त्तियों के सिर, पशु और पक्षियों की मूर्त्तियां, वेदिका के खंभे आदि सम्मिलित हैं। इन सामग्री के कुछ बढ़िया नमूने पास में ही बने हुए अजायबघर में दिखलाये गये हैं। इसी स्थान से आप ने बहुत पुराने चैत्य-गृह के आकार के एक गोल मन्दिर के खंडहरों को भी खोद निकाला था, जो अपनी विशेष बनावट के कारण निश्चय ही मौर्य्यकाल का था।

मुख्य-मन्दिर के पूर्व का क्षेत्र।

मुख्य-मन्दिर के पूर्वीय भाग वाले मैदान में खुदाई की जाने पर पक्के फ़र्श के आगे एक बहुत बड़ा खुला आंगन निकला जो संभवत: किसी समय मध्यकाल में बनवाया गया था। पूर्व से पश्चिम तक इसकी लम्बाई प्राय: २७१ फुट है। उसके पूर्व, उत्तर और दक्षिण की ओर पतली दीवालें हैं। इस आंगन में पहुँचने के लिये पूर्वीय दीवाल के बीच में दोहरी सीढ़ियां बनायी गयी थीं जो विभिन्न काल के पत्थरों की बनी हैं। इस आंगन में दो मन्दिर और बहुत से छोटे छोटे स्तूप मुख्तलिफ़ शक्ल और वक़्त के मिले हैं। इनमें सबसे पुराना और सुन्दर एक बिलकुल ईंटों का बना स्तूप (नं० १३६) है जो कमल के झरोखों, कीर्त्तिमुखों तथा अन्य प्रकार की सजावटों से शोभित है। यह स्तूप उत्तर गुप्तकाल यानी लगभग ७वीं या ८वीं शताब्दी में बना था। इसी

आंगन के पूर्व-दक्षिण के कोने में वाराही या मारीची-देवी का एक छोटा सा मन्दिर है जो १२वीं शताब्दी के लगभग बना था। यहीं पर एक और ख़ास देखने की चीज़ पत्थरों से बनी हुई एक पक्की नाली है जिसमें होकर आंगन का तमाम बरसाती पानी बहता था। सीढ़ी के पास एक पुराना कुंड है जिसमें किसी समय पानी भरा रहता था और उपोसथ के दिन यहां आंगन में अभिधर्म सुनने के लिये इकट्ठे होने वाले भिक्षु-भिक्षुणी अपने हाथ पांव धोते थे।

मुख्य-मन्दिर के उत्तर का क्षेत्र

मुख्य-मन्दिर से उत्तर की तरफ जब हम चलते हैं तो छोटे-बड़े कई तरह के स्तूप तथा अन्य स्मारक मिलते हैं। यहां रास्ते से कुछ पूर्व की ओर हट कर एक हवन कुण्ड (नं० ५०) सर जॉन मार्शल को खुदाई में मिला था। इसमें संभवत: हिन्दू धर्म के मानने वाले हवन वग़ैर: करते थे।

उत्तरी संघाराम का क्षेत्र।

इसी क्षेत्र में चार छ: सीढ़ियां ऊपर चढ़ने पर वह स्थान मिलता है जो मृगदाव के उत्तरी संघाराम (northern monastic area) का क्षेत्र है। इस ऊंचे स्थान पर सब से प्रसिद्ध स्मारक धर्म-चक्र-जिन-विहार (monastery No. I) है जिसे कन्नौज के महाराजा गोविन्दचन्द्र की बौद्ध रानी कुमारदेवी ने १२वीं शताब्दी में बनवाया था। यह विहार लम्बाई में पूर्व से पश्चिम को

ओर ८०० फुट है और माप एवं बनावट में उन सब संघारामों से विलकुल अलग है जो अब तक सारनाथ या और किसी दूसरे जगह की खुदाई में मिले हैं। इसकी बनावट दक्षिण भारत के गोपुरों जैसी है। इसमें भीतर एक खुले आंगन के तीन तरफ तो कोठरियां बनी हैं और बाहर दो विशाल परकोटे और आंगन हैं।

सुरंग और मन्दिर।

इस विहार से पश्चिम की ओर उससे लगी हुई एक सुरंग चली गई है जिसके अन्त में एक छोटा सा मन्दिर है। यह सुरंग ऊपर से मोटी मोटी पत्थर की पटियों से ढकी है और उसके अन्दर जगह जगह दीवालों में दीये रखने के लिये ताखें बनी हैं। इसके अन्दर का फ़र्श बिलकुल पक्का है। इसमें घुसने के लिये पत्थर की पक्की सीढ़ियां भी बनी हैं। अनुमान किया जाता है कि यह सुरंग रानी कुमारदेवी के लिये मन्दिर तक आने जाने का एक निजी रास्ता था। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि यह सुरंग तान्त्रिक आचार्यों की एकान्त साधना के लिये थी।

संघाराम नं० २, ३ और ४

धर्म-चक्र-जिन विहार से घिरे लंबे चौड़े क्षेत्र के नीचे २, ३ और ४ नम्बर वाले तीन पुराने संघाराम दबे हुए थे जिनके कुछ हिस्से अभी खोद कर निकाले गये हैं। बाकी के हिस्से अब भी संघाराम नम्बर १ के नीचे दबे पड़े हैं। रचना में यह तीनों संघाराम सारनाथ के दूसरे

प्राचीन विहारों से मिलते जुलते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ये विहार कुषाणकाल के थे और इनका मौजूदा ढांचा गुप्तकाल का है। इससे सिद्ध होता है कि ये संघाराम पहिले ५वीं सदी में हूणों के हमलों से नष्ट हुए और ६ठीं शताब्दी में फिर बनने के बाद ११वीं शताब्दी में मुसलमानी हमलों के शिकार हुए।

यहां पर संघाराम का क्षेत्र समाप्त होता है। इसके थोड़े आगे दक्षिण की ओर चल कर धमेक स्तूप मिलता है।

धमेक स्तूप।

यह विशालकाय स्तूप १४३ फुट ऊंचा है। इसका घेरा ९३ फुट है। यह स्तूप ऊपर से नीचे तक ईंट और गारे से चुना हुआ है। नींव से ३७ फुट की ऊंचाई तक चारो ओर मोटे और भारी पत्थरों से जड़ा हुआ है जो हर रद्दे पर आपस में लोहे के चापों से बंधे हैं और जिनका सामने का रुख़ साफ़ किया हुआ है। कुर्सी से क़रीब २० फुट की ऊंचाई पर ८ फुट चौड़ी शिलापट्टों की पेटी पर नान्द्यावर्त्त सदृश विविध आकृतियों की सजावट है। इस बन्द के ऊपर और नीचे तरह तरह के फूलों की गोठ चढ़ी है। दक्षिण रुख़ की ओर इन फुलवर गोठों के बीच कमल पर बैठे हुए एक मोटे ताज़े यक्ष की मूर्त्ति बनी है और उसी के पास ऊपर की ओर एक कछुआ और हंस का जोड़ा

बना है जो संभवत: कच्छप जातक* को सूचित करता है। इसके अतिरिक्त स्तूप की बनावट में आठ उभारदार रुख भी बने हैं जिनमें हर एक में मूर्त्ति रखने के आले खुदे हैं। इन आलों में से कुछ में मूर्त्तियां रखने की चौकियां अब भी रखी हैं। कारीगरी का यह सारा काम निहायत ही सुन्दर और मन को लुभाने वाला है। खोज करने से पता चला है कि इस स्तूप की नींव अशोक के समय में पड़ी थी। बाद में इसका निर्माण-विस्तार कुषाणकाल में हुआ और इसकी मौजूदा सूरत लगभग ५वीं शताब्दी में गुप्तकाल में दी गयी। यह नतीजा पत्थरों पर की सजावट और उन पर गुप्त लिपि में खुदे कारीगरों के निशानों (masons' marks) से पूरे तौर से पुष्ट होता है।

'धमेक' शब्द की उत्पति के बारे में अभी तक विद्वानों का यही विचार था कि यह संस्कृत के धर्मेक्षा शब्द से निकला है। किन्तु अभी हाल में अजायबघर में प्रदर्शित एक मिट्टी की मुहर पर, जो लगभग ११वीं शताब्दी की है, 'धामक जयतु' शब्द मिले हैं जिससे उसकी उत्पति का ऊपर लिखे शब्द से होना सन्देह-जनक मालूम होता है। संभवत: इस मुहर का संबंध धमेक स्तूप की कीर्त्ति से है जिससे यह अनुमान किया

---

* फौसबौल कृत जातक कथा नं० १७८।

जा सकता है कि उस काल में धमेक स्तूप का नाम धमाक प्रचलित था।

संघाराम नं० ५।

धमेक स्तूप से कुछ ही दूर पर पश्चिम की ओर संघाराम नम्बर ५ के खंडहर हैं जिसे सब से पहिले मेजर किटो ने (१८५१-५२) खोद निकाला था और अस्पताल करार दिया था। पर हाल में मिली सामग्री से यह बात ज़ाहिर होती है कि यह स्थान भी भिक्षुओं के रहने का विहार था। खुदाई से यह बात भी मालूम हुई है कि इस मध्यकालीन विहार के नीचे गुप्त और कुषाण युग के विहार के खंडहर दबे हैं।

जैन मंदिर।

संघाराम नम्बर ५ के दक्षिण की ओर ऊंची चहार-दीवारियों से घिरा हुआ जैन मन्दिर खड़ा है जो इस धर्म के इतिहास प्रसिद्ध संस्थापक महावीर के १३वें पूर्वज श्रेयांशनाथ जी के यहीं पर सन्यास लेने और मरने की स्मृति में बना है। यही कारण है कि सारनाथ जैनियों की दृष्टि में भी पूज्य है। वर्त्तमान मन्दिर सन् १८२४ में बना था यद्यपि जहां पर यह खड़ा है वह स्थान पुराना है।

ब्राह्मीय मूर्ति शाला।

इस मन्दिर के पीछे एक नया घेरा है जिसे श्री ओर्टेल ने सन् १९०४ में बनवाया था। इस समय यहां जो मूर्त्तियां रखी हैं उन्हें संस्कृत कालेज, काशी, के भूतपूर्व प्रधान अध्यापक डा० वेनिस ने काशी नगर से इकट्ठा

की थीं और जो उनके मरने के बाद यहां प्रदर्शन के लिये भेज दी गईं। इनमें से कुछ बहुत सुन्दर और महत्व की मूर्त्तियों का हवाला इस प्रकार से है :—

हिन्दू मूर्तियां।

घेरे में घुसते ही सामने गुप्तकाल की एक बहुत सुन्दर मूर्त्ति दिखाई पड़ती है जिसमें अपने वाहन कछुए पर खड़ी हुई यमुना जी दिखाई गई हैं। उनके बराबर में एक छत्रधारिणी स्त्री उन्हें छाता लगाये हुये है। गुप्तकाल के हिन्दू मन्दिरों में दरवाज़े के दाएं और बाएं गंगा और यमुना की मूर्त्तियां लगाने की चाल थी। इसलिये यह मूर्त्ति भी शुरू में किसी ऐसी ही जगह पर लगी होगी। इसके अलावा मध्यकाल की भी कुछ सुन्दर मूर्त्तियां हैं जिनमें त्रिदेव, अर्द्धनारीश्वर महादेव, शिव-पार्वती, गणेश और ब्रह्मा आदि की मूर्त्तियां ध्यान देने योग्य हैं। एक सुहावटी (lintel No. G. 38) पर बनी नवग्रहों की सुन्दर मूर्त्तियां भी बड़ी मन को लुभाने वाली हैं।

यमुना G. 2.

नवग्रह सुहावटी G. 38.

जैन-मूर्तियां।

इनमें सब से अच्छी एक तो चौमुखी (प्रतिमा सर्वतोभद्रिका) (G. 61) है जिसमें महावीर, आदिनाथ, शान्तिनाथ और अजितनाथ नाम के चार तीर्थङ्करों की मूर्त्तियां नीचे चौकी पर खुदे हुए उनके वाहन क्रमशः सिंह, वृष, मृग और हाथी के साथ अंकित हैं और दूसरी एक खड़ी हुई मूर्त्ति (G. 62) श्रेयांशनाथ की है जिस पर उनका चिह्न गैंडा या खड्गिन् बना है।

G. 61.

G. 62.

३—अजायबघर।

खुदाई की जगह से थोड़ी ही दूर एक तरफ़ अजायबघर की सुन्दर इमारत बनी है। इसके बनाने का प्रस्ताव सन् १९०४-०५ में सर जॉन मार्शल ने किया था। यह भवन सन् १९१० में बन कर तैयार हुआ। इस की रचना पुराने बौद्ध संघारामों के नक़शे के मुताबिक़ हुई है। यह अजायबघर केवल सारनाथ की खुदाई से पाई गई मूर्त्तियों के रखने के लिये है।

सारनाथ की खुदाई में अब तक लगभग १०,००० वस्तुएं मिली हैं जिनमें मूर्त्तियां, उत्कीर्ण शिलापट्ट (bas-reliefs or stelæ), वेदिकाएं (railings), तरह तरह के इमारती पत्थर (architectural fragments), शिलालेख (inscriptions), मिट्टी के पुराने बर्तन (pottery), खिलौने (terracottas), मुहरें (seals), आदि शामिल हैं। यह सब ईसा के जन्म से ३०० वर्ष पूर्व से लगाकर ईस्वी सन् की १२वीं शताब्दी यानी क़रीब १५०० वर्षों के काल विस्तार के भीतर के हैं। इन मूर्त्तियों के सुन्दर उदाहरण ऐतिहासिक युग विकाश के क्रम से (in chronological order) अजायबघर के बड़े भवन में सजाए हुए हैं। बाक़ी की मामूली चीज़ें गोदाम के भीतर रख दी गई हैं।

कमरा नं० १।

सिंह शिखर।

इस कमरे के दरवाज़े के सामने ही एक अलग चबूतरे पर सारनाथ के कारीगरों की सर्वोत्तम कृति प्रदर्शित है। यह सम्राट् अशोक के सिंह-स्तम्भ का शिरोभाग (capital) (चित्र नं० १) है। इस स्तम्भ-भाग में सब से ऊपर चार सुन्दर सिंहों की मूर्त्तियां हैं जो आपस में पीठ सटा कर उकडूं बैठे हुए हैं। इनकी गर्वीली आँखें, मुंह से बाहर लटकती हुई जीभ, फैली हुई बब्बरी आयालों के बाल एवं पैरों की फड़कती हुई नसों का चित्रण भारतीय शिल्पकला की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। सिंहों से निचले हिस्से में एक फलक (abacus) है जो गले के चारों ओर लपेटी हुई एक कंठी सी जान पड़ती है। उस पर चारों दिशाओं में क्रम से भागते हुए बैल, घोड़ा, सिंह और हाथी की उभारदार (in relief) मूर्त्तियां हैं और हर एक दो जानवरों के बीच में एक धर्म-चक्र बना है। इन पशुओं की चाल से खंभे की प्रदक्षिणा के लिये एक संतत गति (constant revolution) सी सूचित होती है। इन जानवरों को अनेक विद्वानों ने चिह्नात्मक (symbolical) मान कर तरह तरह के आशय (theories) प्रचलित किये हैं किन्तु निरीक्षण की कसौटी पर कसने से सभी सन्देहजनक साबित हुये हैं। फलक (abacus) के नीचे

का भाग उस कमल जैसा है जिसकी पखुड़ियां उलटी हुई हैं। ७ फुट ऊंचे इस सिंह-शिखर (Lion capital) का कोना कोना निहायत सुन्दरता से तराशा गया है और शीशे जैसी चमकीली पालिश से जगमगाता है। सर जॉन मार्शल ने इस शिखर को जो भारतीय शिल्पकला का सर्वोत्तम उदाहरण बताया है इसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है।

वेदिकाएं।

बौद्धों के स्तूप, चैत्य, धर्म-वृक्ष आदि के चारों तरफ़ बहुधा एक प्रकार की चहारदीवारी होती थी जिसे वेष्टनि या वेदिका (railings) कहते हैं। संभवतः यज्ञ-वेदी के चारों ओर बनाये जाने वाले घेरे से इन वेदिकाओं की रचना के स्वरूप को ग्रहण किया होगा। इनके बनावट में नीचे लिखे चार भाग होते हैं।

(१) स्तम्भ (upright pillar)।

(२) सूची (cross-bar) या दो खंभों के बीच में लगने वाले आड़े पत्थर।

(३) उष्णीष (coping stone) यानी दो या दो से अधिक खंभों को जोड़ने के लिये उनके सिर पर रखी हुई सिरदल।

(४) पिण्डिका (base) या पत्थर की वह चौकी जिसमें सीधे खंभे फंसे रहते थे।

इस प्रकार की प्राचीन वेष्टनि के कुछ नमूने (चित्र नं० २) खंभे और उष्णीषों के साथ सिंह-शिखर के पास ही दिखाये गये हैं। ये खंभे स्तूप, गन्धकुटी, धर्म-चक्र, त्रिरत्न, कमल, पूर्णघट, आदि अनेक चिन्हों से सजे हुए हैं और आंध्र कला के नमूने होने के कारण ईस्वी प्रथम शताब्दी के माने गये हैं। इन पर रखे हुए एक उष्णीष या सिरदल (N. 90) पर स्तूप की पूजा का एक दृश्य बड़े ही रोचक ढंग से दिखाया गया है। ज़रा ग़ौर कीजिये उन मत्स्यों की सी लम्बी दुम वाले मानव-मुखाकृति के सुपर्णों पर जो फूलों की भेंट चढ़ाने जा रहे हैं। यद्यपि इस सिरदल पर की सारी कारीगरी बिलकुल काल्पनिक है फिर भी इसकी कलाकारिता से वह शान्ति भाव टपकता है जो उपासना के मौक़े के लिये नितान्त अनुरूप है। यह उष्णीष शुंग कला का एक उत्कृष्ट नमूना है और ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी का माना जाता है।

इनके अतिरिक्त सादे और कढ़े हुये वेदिका-स्तम्भ, सूची, उष्णीष आदि के अनेकों नमूने पश्चिम तथा उत्तर की दीवालों के सहारे रखे हुए हैं। इनमें सर्व प्रसिद्ध ये हैं:—एक खंभा (W. 422) जिस पर 'वेदिका दानम्' लिखा है और दूसरे दो खंभे [D(a) 15-16] जो ईस्वी पूर्व की दूसरी शताब्दी में वेदिका-स्तम्भ के तौर पर दान

दिये गये थे लेकिन बाद में (ई० स० ५वीं सदी.) मूलगन्धकुटी में दीपस्तम्भ (दीयट) की तरह काम में लिये गये। इनमें दीपक रखने के लिये खोदे गये आले और उनमें अब भी जमी पाई जाने वाली तेल की चीकट, खास कर [D(a) 16] में, ध्यान देने योग्य हैं।

कीचक या तुड़िया। D(h) 5.

पश्चिमी दीवाल के सहारे रखी हुई वेदिकाओं के बीच में एक बिना सिर की यक्ष की मूर्ति मिलती है। इसके हाथ जो ऊपर को उठे थे और पैर जो घुटने से मुड़े थे—टूटे हैं। यह वास्तव में छज्जे को रोक के लिये इस्तेमाल में आने वाले कीचक (तुड़िया-atlantis) का एक नमूना है। यक्ष के वेषविन्यास में धोती का पहिनावा, रस्सीनुमा कमरबन्द, चौड़ा गुलूबन्द जो परखम आदि अन्य स्थानों से प्राप्त यक्ष मूर्त्तियों से समानता रखती हैं—इसकी अतिप्राचीनता को प्रकट करती हैं। यह यक्ष मूर्ति लगभग ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी की है।

आलमारी नं० १।

वेदिका-स्तम्भों के बाद उत्तरी दीवाल के सहारे एक शीशे की आलमारी में कुछ देखने लायक चीज़ें हैं।

खाना नं० १।

ऊपर एक खाने में पालिशदार फलकों (abacii) के टुकड़े सजाये हुए हैं जिन पर मौर्य्य कालीन ब्राह्मी लिपि में उनके दाताओं के नाम लिखे मिलते हैं जो पाटलि-

पुच, उज्जैनो आदि नगरों से आये थे। इनमें से एक फलक (W 100) पर सार्थवाहक विश्वदेव और दूसरे (W 98) पर हरिति के नाम खुदे हुए हैं। दूसरे खाने में

खाना नं० २

ईसा से दो शताब्दी पहिले के मौर्य्यकालीन पालिशदार कुछ सिर जिनमें मनुष्य की ठ्ठ बड़ नकल की गयी है, रखे हैं। इनमें से कुछ सिरों की आकृति भारतीय नहीं जान पड़ती है। (W 1) वाले सिर में कटावदार मुकुट के चारों ओर फूलों की माला बड़ी ही खूबसूरती से लपेटी गयी है। (W 4) के चेहरे की बनावट में गोल गाल, छोटी नाक, सकड़ी मुफार, पतले होंठ, बड़ी आंखें, ऐंठी हुई लम्बी झुकावदार मूंछें और जमे हुए बालों के पट्टों को देख कर इसमें संदेह नहीं हो सकता कि यह किसी विदेशी का सिर है। (B 1) में घुटे हुए सिर पर एक मोटी गुथी हुई चोटी दिखाई गयी है। यह सिर किसी साधु का जान पड़ता है। इसी के पास एक स्त्री की टूटी मूर्त्ति (W 213) का कुछ भाग है जिसकी बची हुई रत्नमेखला और कड़ों से उसकी खूबसूरती का कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा खुला हुआ है और मूर्त्ति संभवत: प्रणामाञ्जलिमुद्रा में थी। यहीं पर स्त्रियों के दो शुङ्ग-कालीन सिर (W 221 और W 229) हैं जिनके मोतियों से गुथे हुए बाल भारहुत की स्त्रियों की याद दिलाते हैं।

इससे नीचे के भाग में यूनानी ढंग का शिरस्त्राण (helmet) पहिने हुए एक सैनिक का छोटा सा मिट्टी का सिर दर्शनीय है। इसे श्री रेप्सन ने मौर्य्यकाल से भी पहिले का करार दिया है।* इसके अतिरिक्त चमकीली पालिशदार पशु-पक्षियों की मूर्त्तियों के टुकड़े भी यहीं दिखाये गये हैं। चौथे भाग में कलापूर्ण खुदे हुए वेदिकाओं के टुकड़े हैं जिनमें C(b) 28 पर एक शोक में डूबी हुई स्त्री का चित्रण है जो घुटने पर बाहों के बीच में सिर गड़ा कर अपना मुँह छिपाये है और दुःख की जीती जागती मूर्त्ति जान पड़ती है। वह साड़ी पहिने हुए है और उसके केश पीछे की ओर बिखरे हुए हैं।

खाना नं० ३

खाना नं० ४

सब से नीचे के हिस्से में तीन टुकड़े अशोक स्तम्भ के रखे हैं जिन पर पहिले बयान किये गये लेख की ऊपरी दो सतरों के कुछ अक्षर अब भी मौजूद हैं। पांच टुकड़े उस धर्म-चक्र की कोर के हैं जो शुरू में अशोक-स्तम्भ के सिंह-शिखर पर रखा था, और दो कुषाणकालीन टुकड़े मथुरा के लाल पत्थर के हैं जिनमें से B(a) 4 में पीपल के पत्ते और B(a) 5 में पलथीदार पैर बने हैं। इन्हीं के साथ दो शिला-लेखों के टुकड़े भी रखे हैं जिनमें से एक D(l) 1 महाराज अश्वघोष के समय का है। यह अश्वघोष

खाना नं० ५

* कौम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया, जिल्द १ पृष्ठ ६२२, चित्र नम्बर ३५।

शायद वही हैं जिनका ज़िक्र अशोक-स्तम्भ पर के लेख में किया जा चुका है। दूसरा लेख जिसमें बौद्ध धर्म के चार आर्य्य सत्यों का वर्णन है एक छाते के टुकड़े D(c) 11 पर निम्न प्रकार से मिलता है।

१. चत्तार-इमानि भिक्खवे अर(रि)यसच्चानि।

२. कतमानि[च]त्तारि दुक्ख(खं)दि(भि)क्खवे अरा-(रि)यसच्चं।

३. दुक्खसमुदय(यो) अरियसच्चं दुःखनिरोधो अरिय-सच्चम्।

४. दुक्खनिरोधगामिनी च पतिपदा अरि[य]सच्चम्।

अर्थात् "हे भिक्षुओं। चार आर्य्य सत्य हैं। वे कौन चार हैं? हे भिक्षुओं दुःख है यह आर्य्य सत्य है। उस दुःख का कारण है यह आर्य्य सत्य है। दुःख रोका जा सकता है यह आर्य्य सत्य है और दुःखनिरोध को प्राप्त करने वाला मार्ग है यह आर्य्य सत्य है।"

शुङ्गकालीन शिखर D(g) 4.

यक्ष मूर्त्ति के सामने ऊंची चौकी पर एक स्तम्भ का शिखर रखा है जो ईसा से लगभग पहिली शताब्दी का है। उसमें डंठलदार कमलों के बीच भागते हुए घोड़े पर सवार एक आदमी की मूर्त्ति है और दूसरी तरफ़ एक हाथी की पीठ पर दो मनुष्य हैं जिनमें से एक के हाथ में झंडा है। कला के नाते यह शिखर शुंग कला का एक बहुत बढ़िया नमूना है फिर भी

मौर्य्य कला के मुक़ाबिले में इसकी कला झंपती हुई ही मालूम पड़ती है। मौर्य्य कला का ख़ास गुण उसकी चमकीली पालिश तथा चित्रणों की उभरी हुई गोलाई, स्पष्टता और स्वाभाविकता है। दूसरी ओर शुंग कला में आकृतियों का चित्रण चिपटा और कम उभारदार एवं सजावट के अंगों में कल्पना प्रधान आकृतियां जैसे सुपर्ण, किन्नर, पंखधारी सिंह आदि मिलती हैं।

तोरण के टुकड़े नं० D(a) 42 और D(h) 1 और परगाहा नं० D(g) 23.

बाक़ी के तीन कोनों में बनी हुई ऐसी ही चौकियों पर दो तोरण के टुकड़े और एक खंभे का गोल परगाहा है। पहिले तोरण D(a) 42 के एक ओर चार त्रिरत्न चिन्हों से घिरा हुआ एक धर्म चक्र है तथा दूसरी ओर बोधिमण्ड (वह वज्रासन जिस पर बैठ कर कुमार सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया एवं बुद्ध हुए) और अशोक-स्तंभ की तरह का एक खंभा, तराशे हैं। दूसरे तोरण D(h) 1 पर दोनों ओर दो हाथी सूंड़ में फूलों की माला लिये हुए दिखाये गये हैं। कारीगरी के लिहाज़ से ये तीनों संस्मारक ईसा से पूर्व पहिली शताब्दी के ठहराये गये हैं।

विशाल बोधिसत्व B(a) 1.

सिंह-शिखर के बाईं ओर बोधिसत्व की एक बड़ी डील डौल वाली मूर्त्ति [चित्र ३(i)] है जिसे कनिष्क के राज्यकाल के तीसरे वर्ष में भिक्षु बल ने चढ़ाई थी। यहां पर जो बोधिसत्व संज्ञा है वह गौतम बुद्ध की उनके अभीनिष्क्रमण के बाद पर पूर्ण ज्ञान पाने से पहिले

का जताती है। बोधिसत्व की यह नई भावना मथुरा के कलाकारों की कल्पना है और महायान संप्रदाय की बोधिसत्व भावना से बिलकुल भिन्न है जैसा कि आगे देखने से स्पष्ट होगा। इस मूर्त्ति के नाक, कान और ठोढ़ी के कुछ हिस्से टूटे हैं। मुट्ठी बंधा हुआ बायां हाथ कमर के पास है और दाहिना हाथ जो अभयमुद्रा में था, टूट गया है। शरीर के ऊपरी भाग में बायें कन्धे पर पड़ी हुई (एकांसिक) संघाटी है जो नीचे तक लटक रही है और नीचे घुटने तक लटकता हुआ अन्तर्वासक या अधोवस्त्र है। अन्तर्वासक के ऊपर दो लपेटों वाला कायबन्ध या मेखला है। सिर पर भिक्षु जैसे घुटे बाल और उसके ऊपर उष्णीष दिखाया गया था जो अब टूट गया है। मस्तक के पीछे एक गोल प्रभामंडल था जिसके किनारे पर हस्तिनख जैसे (scallop) कटाव बने थे। यह प्रतिमा मथुरा के चकत्ते-दार लाल पत्थर की बनी है जिससे यह ज्ञात होता है कि यह मूर्त्ति किसी समय में मथुरा से बनवा कर यहां लाई गई थी। इस मूर्त्ति पर दो लेख हैं एक तो आगे की ओर चरणचौकी पर और दूसरा कुछ नीचे की ओर पीठ पर। वे इस प्रकार से हैं :—

पहिला लेख।

१. भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठा-पिता (सहा)।

२. महाक्षत्रपेन खरपल्लानेन सहा क्षत्रपेन वनस्परेन।

अर्थात् त्रिपिटक के आचार्य भिक्षु बल द्वारा समर्पित यह बोधिसत्व की प्रतिमा महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर के साथ स्थापित की गई है।

दूसरा लेख।

१. महाराजस्य काणि (ष्क स्य) सं ३ हि ३ दि २ [२]

२. एतये पूर्वये भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिट[कस्य]

३. बोधिसत्वो छत्रयष्टि च[प्रतिष्ठापितो]

अर्थात् महाराज कनिष्क के वर्ष तृतीय, शारदीय मास तृतीय में बाइसवें दिन त्रिपिटक के आचार्य भिक्षु बल की यह छत्र और दण्ड सहित बोधिसत्व प्रतिमा स्थापित हुई।

इस मूर्त्ति के ऊपर शुरू में एक पूरे खिले हुए कमल की शक्ल का बड़ा भारी छाता था जो ख्याली पशु-पक्षियों और बारह शुभ चिन्हों से भली भांति अलंकृत है। यह मूर्त्ति के पास ही कमरे के पूर्वोत्तर कोने में अलग रखा हुआ है। इस छत्र के आधारदण्ड (छत्रयष्टि) पर, जो खास मूर्त्ति के पीछे चबूतरे पर खड़ा है, नीचे के हिस्से में मिली हुई प्राकृत और संस्कृत में १० पंक्तियों का एक लेख इस प्रकार से है :—

१. महाराजस्य काणिष्क य सं ३ हि ३ दि २२

२. एतये पूर्वये भिक्षुस्य पुष्यबुद्धस्य सद्धोवि-

३. हारिस्य भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य

४. बोधिसत्वो छत्रयष्टि च प्रतिष्ठापितो

५. वाराणसीये भगवतो चंकमे सह्‌ा मात[ा]-

६. पितिहि सह्‌ा उपाध्याया चेरेहि सद्धोविहारि-

७. -हि अन्तेवासिकेहि च सह्‌ा बुद्धमित्रये त्रेपिटिक-

८. -ये सह्‌ा चत्रपेन वनस्परेन खरपल्ला-

९. नेन च सह्‌ा च च[तु]हि परिशाहि सर्वसत्वानम्

१०. हितसुखारत्य(र्थ)म्।

अर्थात् महाराज कनिष्क के तृतीय वर्ष, तृतीय शरत् (मास), बाईसवें दिन की तिथी में पुष्यबुद्धि के शिष्य त्रिपिटकाचार्य्य भिक्षु बल ने बोधिसत्व की मूर्त्ति, छत्र और दण्ड सहित काशी में भगवान् के घूमने के स्थान में अपने माता पिता, उपाध्याय, अन्तेवासी (शिष्य), त्रिपिटाकाचार्य्य बुद्धमित्र, क्षत्रप वनस्पर और खरपल्लान तथा चतुर्वर्ग (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका) के साथ सब जीवों के कल्याण और आनंद के लिये प्रतिष्ठापित किया।

यह प्रतिमा सारनाथ में अब तक खोद निकाली गई बुद्ध मूर्त्तियों में सब से ज्यादः महत्व की है। कारण, इसी

मूर्त्ति को अपने सामने नमूने के तौर पर रख कर सारनाथ के संतराशों ने अपने यहां बुद्ध की मूर्त्ति गढ़ी। यद्यपि, बुद्ध प्रतिमा के उद्भव-स्थान (place of origin) की बात अब भी गहरे विवाद का विषय है तथापि यह दृढ़ रूप से स्थिर हो चुका है कि, विशालकाय (colossal) खड़ी हुई (free-standing) यक्ष मूर्त्तियों के ढंग की बुद्ध प्रतिमाओं का सर्वप्रथम निर्माण मथुरा के शिल्पियों ने ही ईसा के प्रथम शताब्दी में किया। जान पड़ता है कि मथुरा में इन मूर्त्तियों के निर्माण का एक भारी रोज़गार चल पड़ा था, कारण मथुरा से दूर दूर तक जैसे, श्रावस्ती, कौशाम्बी, कुशीनगर आदि स्थानों से भी ऐसी ही मूर्त्तियां पाई गई हैं। प्रस्तुत मूर्त्ति पर पाये गये तिथीयुक्त लेख मूल्यवान् हैं क्योंकि इनसे कनिष्क के धार्मिक, राजनैतिक एवं राज्य-प्रबन्धात्मक (administrative) इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

B(a) 2-3.

सिंह-शिखर के पूर्व और दक्षिण की ओर कुषाण शैली की दो बोधिसत्व प्रतिमाएं [B(a) 2-3] प्रदर्शित हैं जो ऊपर लिखे हुए बोधिसत्व मूर्त्ति से बहुत मिलती हैं। निःसंदेह सारनाथ के शिल्पियों ने मथुरा के ढंग पर जो मूर्त्तियां बनाईं उनके ये अच्छे नमूने हैं।

तोरण का टुकड़ा नं० C(b) 9.

ऊपर लिखे छाते के पास ही ऊंचे दर्जे की कारीगरी वाला तोरण-द्वार (architrave) का एक टुकड़ा

[C(b) 9] रखा है जिस पर रामग्राम के स्तूप का चित्रण है। यह स्तूप उन आठ प्रसिद्ध स्तूपों में से एक है जिनमें बुद्ध की अस्थियां उनके कुशीनगर में परिनिर्वाण होने के बाद संचित रखी गयी थीं। बौद्ध कथानकों के अनुसार इस स्तूप के संबंध की यह प्रसिद्धि है कि जब अशोक ने यहां से बुद्ध की अस्थियों को निकालने का प्रयत्न किया तो इसको रक्षा नागों (सर्पों) ने की और अशोक को अपने प्रयास में विफल होना पड़ा। इसके बगल में ही दीवाल में जड़े हुए दो शिलापट्ट हैं। उनमें से एक [C(b) 12] पर चार त्रिरत्न-चिन्हों के बीच में धर्म-चक्र बना है। दूसरे शिलापट्ट [C(b) 13] में एक अलंकृत वज्र और स्वस्तिक दिखाये गये हैं। इन तीनों टुकड़ों की रचना शैली से उनका निर्माणकाल ईसा से पूर्व की प्रथम शताब्दी का ज्ञात होता है।

शिलापट्ट C(b) 12-13.

संक्रान्ति काल की बुद्ध मूर्ति B(b) 1.

शिलापट्टों के बगल में एक छोटी सी मूर्त्ति है जो अपनी बनावट के लिये खास तौर पर ज़िक्र करने लायक है। उसमें भगवान् बुद्ध अपने दोनों पैरों पर सीधे खड़े दिखाये गये हैं। दाहिना हाथ जो केहुनी से थोड़ा ऊपर उठा हैं अभयमुद्रा में है। सिर पर छल्लेदार बाल और उष्णीष है तथा उसके पीछे एक गोल प्रभा-मंडल है जिस पर हस्तिनख और दो रेखाएं बनी हैं। बदन पर पतले व हल्के चिचीवर हैं जो अपने छोरों से

ही सिर्फ जाने जा सकते हैं। यह मूर्त्ति उस संक्रान्ति-काल (transition period) की बनी है जब कि पूर्वी भारत में कुषाण शैली के बदले एक नयी शैली (style) फैल रही थी जो गुप्त शैली के नाम से मशहूर हुई।

कुषाण और गुप्त बुद्ध मूर्त्तियों का मुकाबिला।

कुषाणकालीन बुद्ध मूर्त्तियों में जहां हमें चिपटी नाक, चौड़े चेहरे तथा मोटे बदन मिलते हैं वहां गुप्त शैली की मूर्त्तियों में नुकीली नाक, गोल चेहरे तथा सुन्दर और कोमल कलेवर मिलते हैं। कुषाणकालीन मूर्त्तियां कोर कर बनाई जाती थीं (carved in round) जिसमें उनके दर्शन चारों दिशाओं से हो सके। किन्तु, गुप्त-काल में मूर्त्ति का दर्शन सामने के भाग में ही रह जाता था। कुषाण मूर्त्तियों का मस्तक प्राय: मुंडा मिलता है पर गुप्तकाल की मूर्त्तियों में हमेशा सिर पर छल्लेदार बाल रहते हैं जिनके बनावट का ढंग एक तरह से रूढ़गत (conventional) सा होगया था। कुषाण शैली में जहां मूर्त्तियों पर बहुत ही मोटे तथा भारी चीवरों का प्रयोग दिखाया गया है वहां गुप्त शैली में हमें हल्के व पतले कपड़े मिलते हैं। ये चीवर भीगे वस्त्र की नाई शरीर से बिलकुल चिपके होते हैं और केवल अपने छोरों से ही पहिचाने जा सकते हैं। वर्ना, मूर्त्ति बिलकुल नंगी मालूम होती है। कुषाणकाल की मूर्त्तियों में अभयमुद्रा दिखाने के

लिये दाहिना हाथ कन्धे की सीध में रहता है पर गुप्त-काल में केवल केहुनी तक का ही हाथ ऊंचा उठा रहता है। प्रस्तुत मूर्त्ति के दाहिने हाथ का कन्धे और केहुनी की सीध के बीच में होना ज़ाहिर करता है कि उसके बनने के वक़्त तक गुप्त शैली का पूर्ण विकाश नहीं हुआ था।

कुषाण मूर्त्तियों में बुद्ध सदैव दण्डाकार सीधे खड़े रहते हैं जो बहुत ही अस्वाभाविक मालूम होता है। पर यही खड़े होने का ढंग गुप्त मूर्त्तियों में बड़ा सहज होता है। इसमें एक पैर का घुटना कुछ बाहर निकला होता है और कमर पर कुछ लोच (भंग) सी रहती है। देवातिदेवभगवान् होने के कारण बुद्ध मूर्त्तियों में मस्तक के पीछे प्रायः एक प्रभामंडल दिखाया जाता था। कुषाणकाल में यह प्रभामंडल बिलकुल सादे ढग का होता था, केवल किनारे पर अर्द्धचन्द्राकार बने रहते थे। किन्तु कला के विकाश के साथ इस कटाव के नीचे दो गोल लकीरें भी आयीं जैसी कि इस मूर्त्ति में मौजूद है। बाद में इन्हीं दोनों लकीरों के बीच की जगह को गुप्त-कालीन कलाकार मणिबन्ध (bead-course) बनाने के काम में लाने लगे। यह बात बग़ल में रखी हुई बुद्ध मूर्त्ति B(b) 6 में साफ़ देखी जा सकती है। ज्यों ज्यों कला का विकाश (develop-ment) होता गया, गुप्त-कलाकारों ने प्रभामंडल (halo)

को उत्तरोत्तर विविध चित्रणों से अलंकृत कर अपने चमत्कार एवं कौशल का परिचय दिया।*

गुप्त-कालीन बुद्ध मूर्तियां।

कमरे के दक्षिणी भाग में जो बुद्ध मूर्त्तियां दीवाल के सहारे लगी हैं वे सब गुप्तकाल की हैं और गुप्त शैली के पूर्णविकसित स्वरूप (fully developed forms) का परिचय कराती हैं। इनमें से तीन मूर्त्तियां ऐतिहासिक महत्व की हैं कारण उनकी चौकियों पर खुदे हुए निम्नाङ्कित लेखों से गुप्त सम्राटों के अधिकारानुक्रमिक इतिहास (chronological sequence) पर प्रकाश पड़ता है।

E-२२ पर का लेख।

१. वर्षशते गुप्तानां सचतुःपञ्चाशदुत्तरे भूमिम्[।]
रक्षति कुमारगुप्ते मासि ज्येष्ठे द्वितीयायाम्॥

२. भक्त्यावर्जितमनसा यतिना पूजार्थमभयमित्रेण[।]
प्रतिमाप्रतिमस्य गुणै[र]प[रे]यं [का]रिता शास्तुः॥

३. मातापितृगुरुपूर्तिः पुण्येनानेन सत्वकायोयं[।] लभतामभिमतामुपशमन . . . . यम्॥

अर्थात् गुप्तशासन के १५४ वर्ष बीतने पर ज्येष्ठ मास की द्वितीया के दिन जब कुमारगुप्त द्वारा पृथ्वी की

* इस संबंध में साहनी कृत S. M. Cat. के Nos. B(b) 4 और B(b) 181 के प्रभामण्डल को देखिये।

रहा हो रही थी तब भगवान् बुद्ध की यह प्रतिमा भक्तिविभोर भिक्षु अभयमित्र ने पूजा के लिये स्थापित की। माता, पिता, गुरु एवं सम्पूर्ण जन-साधारणवर्ग इस पुण्य कार्य से अपनी इष्ट सद्‌गति को प्राप्त करें।

E 39-40.*

१. गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथ्वीं बुधगुप्ते प्रशासति॥
वैशाखमाससप्तम्यां मूले श्या[मगते मया]।
कारिताभयमित्रेण प्रतिमा शाक्यभिक्षुणा॥
इमामुद्धस्तसच्छत्र पद्मासनविभूषिताम्।
दे[व]पुत्रवतो दि[व्यां]चित्रवि[न्या]सचित्रिताम्॥
यदत्र पुण्यं प्रतिमां कारयित्वा मयाऽभृतम्।
मातापितरौ गुरूनाञ्च लोकस्य च शमाप्तये॥

अर्थात् गुप्तशासनकाल के १५७वें वर्ष के वैशाख कृष्ण सप्तमी वाले दिन, जब चन्द्रमा मूल नक्षत्र में था और जिस समय बुद्धगुप्त राज्य कर रहे थे, बौद्ध भिक्षु अभयमित्र ने इस प्रतिमा की स्थापना की जिसमें देवपुत्र तुल्य दिव्य और सुन्दर चित्रविन्यासों से अलंकृत बुद्ध मूर्त्ति अभयमुद्रा में हाथ उठाये पद्मासन पर छत्रसहित शोभायमान है। इस प्रतिमा के दान के पुण्य से मेरे माता, पिता, गुरुजन एवं मानवमात्र का कल्याण हो।

---

* इन दोनों पर के लेख एक ही हैं।

सारनाथ की सर्वप्रसिद्ध बुद्ध मूर्ति B(b) 181.

मृगदाव की खोदाई में अब तक पाई गई बुद्ध मूर्त्तियों में, कला तथा चित्रण के नाते, सब से श्रेष्ठ, सुन्दर तथा भव्य मूर्त्ति (चित्र ४) है नंबर B(b) 181 जिसमें भगवान् धर्म-चक्र मुद्रा में दिखाये गये हैं। यह मूर्त्ति कमरा नंबर २ के रास्ते और बरामदे वाले दरवाज़े के बीच की जगह में और दो ऐसी ही मुद्रा की बुद्ध मूर्त्तियों के साथ रखी है। यह मूर्त्ति सारनाथ के शिल्पियों के स्थापत्य कौशल की पराकाष्ठा को प्रकट करती है। बुद्ध द्वारा मृगदाव में किये हुए धर्म-चक्र-प्रवर्तन के मूल में जो आध्यात्मिक भाव था उसी को एक सहस्र वर्ष के बाद यहां के चतुर शिल्पी इस मूर्त्ति के द्वारा हमारे सामने प्रत्यक्षरूप में प्रकट करने में सफल हुए। चौकी पर पद्मासन में बैठे हुए बुद्ध के दोनों हाथ धर्म-चक्र-प्रवर्तनमुद्रा में हैं जो अज्ञात कौण्डिन्य आदि पञ्चभद्र-वर्गीय भिक्षुओं को इस स्थान में दिये गये सर्वप्रथम धर्मोपदेश को सूचित करती है। ये ही पांच भिक्षु नीचे चौकी पर दिखाये गये हैं। बीच में एक चक्र तथा दो मृग बने हैं जो क्रमश: 'धर्म-चक्र' तथा 'मृगदाव' के चिन्ह स्वरूप हैं। इनके अतिरिक्त आसन पर दाहिनी ओर एक स्त्री तथा उसके छोटे बच्चे की भी मूर्त्तियां हैं। संभवत: इसी स्त्री ने अनुपम छटा से पूर्ण इस मूर्त्ति को स्थापित किया था। बुद्ध के शरीर के पीछे चौकी का पृष्ठ भाग है जिस पर दायें बायें दो व्यालक (leogryphs)

और मकर बने हैं। सिर के पीछे एक सुन्दर छायामंडल है जो डंठल सहित कमल के बेलबूटों तथा मणिबन्धों से खूब सजा हुआ है और जिसके ऊपर दोनों ओर देवता-गण पुष्प-वृष्टि करते दिखाये गये हैं। देवातिदेवभगवान् बुद्ध के मुख पर जो प्रशान्त भाव तथा आनन्द की मुद्रा है उसके कारण यह मूर्त्ति भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ मूर्त्तियों में से एक गिनी जाती है।

भूमिस्पर्श-मुद्रा में बुद्ध मूर्त्ति B(b) 175.

इससे करीब १०० वर्ष बाद की एक दूसरी बड़ी बुद्ध मूर्त्ति B(b) 175 है जिसमें उन्हें भूमिस्पर्शमुद्रा में बैठे दिखाया गया है। यह मुद्रा उस अवस्था को सूचित करती है जब भगवान् बुद्ध ने बोधगया में वज्रासन पर बैठ कर मार को हराया तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। आसन-पीठिका में नीचे दाहिनी ओर खण्डित मूर्त्ति देवी वसुन्धरा की है, जिसे कहा जाता है, भगवान् बुद्ध ने अपने पूर्व जन्म की की हुई तपश्चर्य्या की साची देने के लिये बुलाया था। दूसरी ओर तीन नाचती हुई मूर्त्तियां हैं जो मार की कन्यायें हैं जिन्होंने इस महापुरुष को विचलित करने के लिये अपने हाव-भाव दिखाये थे। आसनपीठिका के ऊपरी कोर पर लगभग छठी शताब्दी की लिखावट में एक लाइन का संस्कृत लेख है जिससे यह मालूम पड़ता है कि यह मूर्त्ति बौद्ध भिक्षु स्थविर बन्धुगुप्त की पवित्र भेंट है।

महायान बौद्ध मूर्त्तियां।

इसके आगे कमरे की पश्चिमी दीवाल के सहारे जो बाक़ी मूर्त्तियां रखी हैं वे बौद्ध धर्म के इतिहास के एक दूसरे पहलू पर प्रकाश डालती हैं। भगवान् बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने के बाद उनके शिष्य-समुदाय में सिद्धान्तों के संबंध में कुछ मतभेद पैदा हुआ जिसकी वजह से बौद्ध लोग हीनयान तथा महायान नाम की दो शाखाओं में बट गये। इनमें से महायान संप्रदाय के मानने वालों ने सिर्फ़ बुद्ध के सिद्धान्तों पर ही ध्यान न रख कर, पौराणिक धर्म के प्रभाव में बहुत से देवी-देवताओं की कल्पना कर डाली। इनके मत में सृष्टि का आदिकारण 'आदिबुद्ध' और 'आदिप्रज्ञा' या 'प्रज्ञापारमिता' माने गये हैं। इन्हीं से पाँच ध्यानी-बुद्ध उत्पन्न होते हैं। ये ध्यानी-बुद्ध, संसार के समस्त व्यापारों से परे रह कर, हमेशा अखण्ड समाधि में लीन रहते हैं। सृष्टि कार्य की प्रवृत्ति के लिये इनके साथ एक एक बोधिसत्व का संबंध है। ये बोधिसत्व लोक-कार्य को चलाने के लिये समय समय पर मानुषीरूप में पैदा होते हैं तथा अपने कार्य को ख़तम करके फिर अपने कारण (cause) में लीन हो जाते हैं। इनकी संज्ञा मानुषी-बुद्ध है। इन्हीं सब से इस पन्थ के देवताओं का संपूर्ण व्यापक विस्तार संबद्ध है।

देवताओं के साथ साथ महायान संप्रदाय में अनेकों देवियों की भी कल्पना की गई। इनमें तारा का स्थान

मुख्य है। यद्यपि तारा की पूजा हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों में होती हैं पर यह ख़ास तौर से बौद्ध देवी है। बौद्ध धर्म के मुताबिक़ तारा का ख़ास संबंध अवलोकितेश्वर से है और वह कहीं कहीं उनकी शक्ति भी (consort) मानी जाती है।

मैत्रेय
B(d) 2.

ऊपर लिखे महायान पन्थ के देव-देवियों की जो थोड़ी मूर्त्तियां इस लाइन में प्रदर्शित हैं उनमें सर्वप्रथम लाल आभा के पत्थर की कायपरिमाण (life-size) मूर्त्ति B(d) 2 जिसके ऊंचे जटाजूट से बाहर कन्धे तक बालों की लटें लटक रही हैं, बोधिसत्व मैत्रेय की है जो बौद्धों के अनुसार गौतम बुद्ध के निर्वाण के ५००० वर्ष बाद भावी बुद्ध होकर जन्म लेगें। मैत्रेय के मुकुट में उनके धर्म-पिता ध्यानीबुद्ध अमोघसिद्धि की मूर्त्ति है तथा बायें हाथ में नागकेशर का फूल है। अपनी निर्माण-शैली के कारण यह मूर्त्ति छठी शताब्दी की ठहरती है।

भृकुटी तारा
B(f) 1.

इसके बग़ल की मूर्त्ति B(f) 1 बौद्ध देवी भृकुटी तारा की है जो सुन्दर साड़ी पहिने हैं और जिसके बायें हाथ में कमण्डलु है। यह मूर्त्ति ईस्वी सन् की ७वीं शती के क़रीब की है और सारनाथ से प्राप्त इस देवी की मूर्त्तियों में सब से पुरानी है। इसके अतिरिक्त इस स्थान से और भी बहुत सी मूर्त्तियां इस देवी की प्राप्त हुई हैं जिनमें कुछ विशेष महत्व की कमरा नम्बर २ में

अलमारी नम्बर २ के दाहिने तरफ़ रखी हैं। यह मूर्त्तियां अधिकतर मध्यकाल की हैं और तारा के बहुत से रूपों को बतलाती हैं।

वज्रपाणी बिना नंबर।

तारा मूर्त्ति के बग़ल में एक बिना नम्बर की मूर्त्ति बोधिसत्व वज्रपाणी की है जो अभाग्यवश पूरी गढ़ी नहीं जा सकी। इसके दाहिने हाथ में वज्र तथा बायें हाथ में घंटी है। ऊपर मुकुट में बोधिसत्व के आध्यात्मिक गुरू ध्यानीबुद्ध अमिताभ अंकित है। नम्बर B(d) 1 [चित्र ५(i)] पूरे खिले कमल पर वरदमुद्रा में खड़े हुए लोकनाथ की मूर्त्ति है जो अवलोकितेश्वर के अनेक रूपों में से एक हैं। इनके बायें हाथ में कमल तथा जटाजूट में ध्यानस्थ अमिताभ शोभायमान हैं। इस मूर्त्ति के चौकी पर खुदे हुए लेख से पता चलता है कि सुयत्र नाम के किसी विषयपति (district officer) ने सब धार्मिक प्राणियों की ज्ञानप्राप्ति के लिये इसे अर्पित किया था। कला के हिसाब से यह मूर्त्ति लगभग ५वीं सदी की ठहरती है।

लोकनाथ B(d) 1.

सिद्धैकवीर B(d) 6.

नम्बर B(d) 6 बोधिसत्व मञ्जुश्री के बहुत से रूपों में से एक रूप सिद्धैक-वीर [चित्र ५(ii)] की मूर्त्ति है। इनके अगल बगल कमल पुष्पों पर भृकुटी और मृत्युवञ्चना तारा खड़ी हैं। बोधिसत्व ने बहुत से सुन्दर गहने पहिने हैं। उनके मुकुट पर ध्यानीबुद्ध अक्षोभ्य भूमि-स्पर्श

मुद्रा में विराजमान हैं। बोधिसत्व के हाथ में एक कमल था जो अब टूट गया है। नम्बर B(d) 3 अवलोकितेश्वर के एक रूप नीलकण्ठ की मूर्त्ति है जो हाथ में एक प्याला (पात्र) लिये है। इसके मस्तक पर अमिताभ ध्यानमुद्रा में दिखाये गये हैं तथा दोनों कन्धों पर वैसे ही पात्र लिये एक स्त्री और एक पुरुष की मूर्त्ति खड़ी है। यह दोनों मूर्त्तियां ईस्वी सन् की ७वीं शताब्दी की हैं।

नीलकण्ठ
B(d) 3.

कमरा नम्बर २।

इस लम्बी दरीची में सजाई गई पुरातत्व सामग्री में ज्यादः तर बुद्धमूर्त्तियां या शिलापट्ट (stelæ) हैं जिन पर तथागत के जीवन की एक या एक से अधिक घटनाएं चित्रित हैं। ये मूर्त्तियां ५वीं से ६वीं शताब्दी तक की हैं। इनके अतिरिक्त इसी काल की कुछ बोधिसत्व मूर्त्तियां भी इस कमरे के पूर्व-दक्षिण भाग में प्रदर्शित हैं।

शिलापट्ट
C(a) 1.

यह शिलापट्ट चार खानों में बँटा हुआ है। सबसे पहिले नीचे की ओर (a) गौतम बुद्ध के जन्म का दृश्य है जिसमें उनकी माता मायादेवी अपनी बहिन प्रजापती के साथ साल वृक्ष के नीचे खड़ी हैं। दाहिनी ओर इन्द्रदेव बच्चे को लिये हुए हैं। इसी खाने के दाहिने कोने में नन्द और उपनन्द नाम के दो नाग बच्चे को

नहला रहे हैं। दूसरे खाने (b) में बोधगया में तप करते हुये भगवान् बुद्ध पर मार का आक्रमण दिखाया गया है। मार की तीनों कन्याएं रति, प्रीति और तृष्णा भी तपस्या भंग करने के लिये आई हुई अंकित हैं। तीसरे खाने (c) में भगवान् बुद्ध के धर्म-चक्र-प्रवर्तन का दृश्य है जिसमें वे अपने प्रथम पांच शिष्यों को मृगदाव में आदेश दे रहे हैं। क्रमशः भावी बुद्ध मैत्रेय और बोधिसत्व पद्मपाणी भगवान् बुद्ध के दाहिने और बायें खड़े हैं। अन्तिम दृश्य (d) में भगवान् का परि-निर्वाण है जो कुशीनगर (ज़िला गोरखपुर) में हुआ था। इसमें बुद्ध जी दाहिनी करवट से पड़े हैं और उनके चारों ओर शोक से व्याकुल शिष्यों और दर्शकों की भीड़ है।

C(a) 3 [चित्र ६(a)] में बुद्ध के जीवन की ८ घटनायें अंकित हैं जिनमें ऊपर लिखी चार घटनायें इस शिलापट्ट के चार कोनों पर बनी हैं। शेष चारों बुद्ध के जीवन से संबंध रखने वाले गौण (secondary) दृश्य हैं जो बीच में इस तरह से तराशे हुए हैं:— C(a) 3.

(c) <u>मधु अर्पण</u> जिसमें एक बंदर बुद्ध को शहद भरा प्याला भेंट कर रहा है। कहा जाता है कि एक बार भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों से रुष्ट होकर कौशाम्बी में एकान्तवास कर रहे थे उस समय एक बंदर ने भक्ति

भाव से प्रेरित होकर उन्हें मधु अर्पण किया। इस पुण्य कार्य के करने के बाद एक कूएं में डूब कर उस बंदर ने अपनी जीवनलीला समाप्त की और स्वर्ग चला गया।

(d) नालागिरि का दमन जिसमें बुद्ध के आगे शरणागत के भाव में घुटने टेके हुए नालागिरि नामक मदोन्मत्त हाथी दिखाया गया है। इसे बुद्ध के अत्यन्त विद्वेषी और ईर्षालु भाई देवदत्त ने उनका वध करने के लिये छोड़ा था।

(e) स्वर्गावतरण जिसमें बुद्ध को त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से संकिस्सा में उतरते हुए दिखाया गया है, जहाँ वे अपनी मृत माता को अभिधर्म का निर्देश करने के लिये श्रावस्ती से उड़ कर गये थे। बुद्ध के एक ओर छाता लिये हुए इन्द्र और दूसरी ओर कमण्डलु लिये हुए ब्रह्माजी दिखाये गये हैं।

(f) श्रावस्ती का चमत्कार जिसमें भगवान् बुद्ध राजा प्रसेनजित् के दरबार में अनेक शरीर धारण करके आकाश में अधर ठहरे हुए उपदेश दे रहे हैं।

C(a) 2.

C(a) 2 [चित्र ६ (b)] यह शिलापट्ट प्रदर्शित शिलापट्टों में शिल्प की दृष्टि से सबसे उत्तम है। इसमें दो और घटनाओं के दृश्य देखने को मिलते हैं जो ऊपर

बयान किये गये शिलापट्टों में अंकित नहीं है। इसके एक अंश (a) में मायादेवी का स्वप्न दिखाया गया है जिसमें वह एक सफ़ेद हाथी को स्वर्ग से उतर कर अपने शरीर में घुसते देख रही हैं। दूसरे अंश (b) में महाभिनिष्क्रमण (renunciation) का दृश्य है जब वाहक के साथ कुमार अपने प्रिय अश्व कन्थक पर चढ़ कर ज्ञान की खोज में निकले थे। घोड़े के पीछे कुमार अपनी तलवार से अपने बालों को काटते हुए दिखाये गये हैं और ऊपर की ओर एक देवी उन बालों को पात्र में लेकर उड़ी जा रही है।

C(b) 1.

बगल में ही प्रदर्शित शिलापट्ट C(b) 1 में हवा में उड़ान लेता हुआ एक व्यालक (leogryph) बना है जिस पर ढाल-तलवार धारी एक योद्धा चढ़ा है। इस जन्तु की सींगें, कौशलपूर्ण मुखगह्वर, विस्फारित नेत्र और पंजों के साथ ही साथ युवा आरोही के घुंघराले बाल गुप्तकालीन कला के लालित्य को यथेष्ट प्रमाणित करती हैं।

चबूतरे के शेष भाग में जो बुद्ध मूर्त्तियाँ हैं उनमें वे कहीं अभयमुद्रा में तो कहीं व्याख्यानमुद्रा में दिखाये गये हैं। इन्हीं के समीप में कुछ बोधिसत्वों की भी मूर्त्तियाँ प्रदर्शित हैं।

आलमारी नंबर १।

पूर्वी दीवाल के बीच में जो बड़ी शीशे की आलमारी है उसमें सबसे ऊपर और नीचे वाले खानों में गुप्तकाल

की नक्काशीदार ईंटें रखी हैं। दूसरे खाने में बुद्ध तथा बोधिसत्व के कुछ सिर रखे हैं। तीसरे तथा चौथे खानों में कुछ टूटी मृत्पट्टिकायें (terracotta plaques) हैं जिन पर 'श्रावस्ती का चमत्कार' और 'बुद्ध पर मार का सम्मोहन प्रयोग' आदि के दृश्य अंकित हैं। इसके अलावः तरह तरह की सुन्दर नक्काशियों से कढ़े हुए बहुत से मिट्टी चूने के टुकड़े भी इन्हीं में प्रदर्शित हैं।

टेबुल नं० १। कमरे के बीच में रखे हुए चार शीशेदार मेजों में नम्बर १ में ताँबे की ढली हुई मूर्त्तियाँ, सिक्के, ताम्रपत्र, संस्मारक पेटिका, आदि रखे हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ चाँदी तथा ताँबे के गहने जैसे कड़े, बालियां, नं० २। अंगूठी, सिकड़ी आदि भी यहां प्रदर्शित हैं। नम्बर २ में कुछ छोटी छोटी सुन्दर बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्त्तियां नं० ३। हैं। नम्बर ३ में विभिन्न प्रकार व काल के बुद्ध तथा नं० ४। बोधिसत्व के सुन्दर शिरोभाग हैं। नम्बर ४ में बुद्ध के हाथ के कुछ बढ़िया नमूने तथा मूर्त्तियों की लेखयुक्त गुप्त-कालीन खंभे। चरणचौकियां रखी हैं। टेबलों के बीच में जो चार खंभे खड़े हैं वे शुरू में किसी विहार में लगे थे और गुप्त-काल की कारीगरी के सुन्दर नमूने हैं।

बुद्धमूर्त्तियां पश्चिमी दीवाल से सटे दोहरे चबूतरे के उत्तरार्द्ध में अधिकतर बुद्ध की छोटी मूर्त्तियां हैं जिनमें उनके जीवन की घटनायें दिखाई गई हैं। इन्हीं के साथ में एक बिना

नम्बर की आवक्ष मूर्त्ति (bust) बोधिसत्व मैत्रेय की है। इसका शिल्पण बहुत ही सुन्दर हुआ है और यह सारनाथ की प्राचीन मूर्त्तिनिर्माणकला का एक सुन्दर नमूना है। बोधिसत्व के बायें कन्धे पर अजिन (मृगचर्म) रखा है। उसी ओर दक्षिणाई भाग की निचली क़तार में मूर्त्तियों की चरणचौकियां रखी हैं जिनमें बहुतों पर मूर्त्तियों के चरणचिन्ह और लेख मौजूद हैं। ऊपरवाली क़तार में नक़्क़ाशीदार इमारती पत्थरों के टुकड़ों के कुछ नमूने रखे हैं जिनमें २५१/१५, D(i) 122-123 और N 79 विशेष उत्कृष्ट हैं। इनमें बेलबूटेदार सजावट के बीच में खुले हुए मकर मुखों में यक्षकुमारों (corpulent babies) की मूर्त्तियां दिखाई गई हैं। ठीक इसी प्रकार की रचना गुप्तकाल में बने हुए भूमरा और देवगढ़ के मन्दिरों में वहां की सुहावटियों (lintels) और द्वारशाखाओं (doorjambs) पर भी पाई जाती हैं।

बोधिसत्व मैत्रेय।

चरणचौकियां

इमारती पत्थर।

कमरा नम्बर ३।

यहाँ पूर्वी दीवाल के सहारे जो मूर्त्ति खड़ी है वह गोवर्धनधारी कृष्ण की है जिसमें उन्होंने अपने बायें हाथ की हथेली पर गोवर्धन पर्वत उठा रखा है। यज्ञ में अपना भाग पाना बंद हो जाने से रुष्ट हो कर इन्द्र ने

गोवर्धनधारी कृष्ण।

कृष्ण के अनुयायियों का नाश करने के लिये जो घोर वर्षा की थी उससे गौओं और ब्रजवासी ग्वाल-बालों की रक्षा के लिये भगवान् श्री कृष्ण ने यह चमत्कार किया था। काक-पक्ष शैली के कन्धे तक लहराते हुए बाल और छाती पर बाघनखों के बीच मरकतमणि की रचना बड़ी ही अपूर्व हैं। महीन लहरियों द्वारा दिखाई गई धोती भी अत्यन्त कलापूर्ण है। यह मूर्त्ति बनारस शहर में अर्रा नामक स्थान से मिली थी पर सारनाथ की गुप्त-कालीन मूर्त्तियों की बनावट से इसकी बहुत समता होने के कारण यह यहाँ लाकर प्रदर्शित की गई है।

श्रेयांशनाथ G 63.

G 63 एक और मूर्त्ति है जो सारनाथ से न पाई जाने पर भी इसी मूर्त्ति के पास दक्षिण दीवाल मे सटी रखी है। यह मूर्त्ति जैनों के ११वें तीर्थंकर श्रेयांशनाथ जी की है। इसका काल ईस्वी सन् की ७वीं या ८वीं सदी माना गया है।

अन्य जो कुछ पुरातत्व संबंधी सामग्री इस कमरे में सजी है वह सब सारनाथ मे निकली है और मध्ययुग (६००-१,२०० ई० स०) की है। इनमें ज्यादःतर बुद्ध मूर्त्तियाँ हैं जिनमें या तो वे भूमिस्पर्श-मुद्रा में या व्याख्यान-मुद्रा में दिखाये गये हैं। ये सब मूर्त्तियाँ मगध और पाल कला की द्योतिकायें हैं। इनमें गुप्तकला की सी सजीवता, सादगी और स्वभाविकता के जगह पर

अप्राकृतिक अलंकारिता और व्यापकप्रच्छिन्नरचनाओं (intricate designs) की भरती मिलती है। इन मूर्त्तियों में स्फुलिंगों की किनारी से युक्त अंडाकार प्रभामण्डल (oval halo with flaming border) तथा प्रभावली पर बने हुए सिंहासन विशेषत: ध्यान देने योग्य हैं।

B(c) 1 धर्म-चक्र-मुद्रा में बैठी हुई किसी बुद्ध मूर्त्ति की चरण-चौकी है (चित्र ७) जिस पर दो पाल-बन्धुओं का महत्वपूर्ण लेख नीचे लिखे प्रकार से खुदा है।

अभिलिखित बुद्ध मूर्ति की चरणचौकी B(c) 1.

मूल।

१. ओम् नमो बुद्धाय। वाराणशी(सी)सरस्यां गुरव-
श्रीवामराशिपादाब्जम्।

आराध्य नमितभूपतिशिरोरुहै शैवलाधीशम्॥

ईशानचित्रवण्टादि कीर्त्तिरत्नशतानि यौ।

गौड़ाधिपो महीपाल: काश्यां श्रीमानकार[यत्]॥

२. सफलीकृतपांडित्यौ बोधावविनिवर्त्तिनौ।

तौ धर्मराजिकां साङ्गं धर्म-चक्रं पुनर्नवम्॥

कृतवन्तौ च नवीनामष्टमहास्थानशैलगन्धकुटीम्।

एतां श्रीस्थिरपालो वसन्तपालोनुज: श्रीमान्॥

सम्वत् १०८३ पौष दिने ११।

अनुवाद।

ओम्। बुद्ध को नमस्कार। काशी में गुरु श्री वामराशी के उन चरणों को धोने के बाद, जो राजाओं के नमस्कारों से बिखरनेवाली सेवालरूप केशराशि के बीच वाराणसी ऐसे तालाब में कमल की तरह शोभायमान है, बंगाल के अधिपति श्रीमान् महीपाल द्वारा अपने कीर्त्ति के लिये यहाँ पर शिव के, दुर्गा के तथा दूसरे सैकड़ों भव्य संस्मारक बनवाये जाने का दायित्व सौंपे जाने पर श्रीमान् स्थिरपाल व श्रीमान् वसन्तपाल भाइयों ने, जिन्होंने अपने पांडित्य को सफल किया है और जो ज्ञान से पराङ्मुख नहीं है, धर्मराजिका (अशोक-स्तूप) और अंगों के सहित धर्म-चक्र अर्थात् धर्म-चक्र विहार का जीर्णोद्धार कराया और आठ महास्थानों से संबद्ध इस पत्थर की नई गन्ध-कुटी को बनवाया। संवत् १०८३ पौष एकादशी।

अवलोकितेश्वर B(d) 8.

B(d) 8 खिले हुए दोहरे कमल पर अर्द्धपर्य्यङ्कासन में बैठे हुए अवलोकितेश्वर की मूर्त्ति है। इनका दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है तथा बायें में कमल है। बोधिसत्व के जटा मुकुट में उनके धर्म-पिता ध्यानीबुद्ध अमिताभ की मूर्त्ति बनी है। मस्तक के पीछे मगध शैली का अण्डाकार प्रभामण्डल है जो फूलों के हार तथा स्फुलिंगों

की गोठ (flaming border) से सजा हुआ है। यह मूर्त्ति लगभग १०वीं शताब्दी की है।

आलमारियां।

कमरे में दक्षिणी दीवाल से लगी हुई जो शीशे की आलमारियाँ हैं उनमें ऐसी घरेलू वस्तुएं संचित हैं जिन्हें देखने से पता चलता है कि उस ज़माने में संघों में रहने वालों का जीवन कैसा था और उनके रोज़ के काम के लिये किन किन वर्तनों आदि की ज़रूरत होती थी। ये सब चीज़ें ज़्यादःतर मिट्टी की बनी हैं और इनका समय ईस्वी पूर्व की तीसरी शताब्दी से ईस्वी सन् की १२वीं शताब्दी तक का है। इनमें कुछ सामग्री जो विशेष रूप से देखने योग्य हैं वह चकमकदार पालिशवाले भिक्षा-पात्र, भिक्षुओं की सुराही की टोटियों के टुकड़े (spouts), मालाओं की गुरियां (beads of rosary), कौड़ियाँ, अपने नाम खुदी हुई मुद्रायें (seals), बौद्धमंत्र वा अन्य लेखों से अंकित मुद्रांकणें (sealing), कच्ची व पक्की मिट्टी के बने हुए छोटे छोटे स्तूप जिन पर बहुत ही सूक्ष्म उलटे अक्षरों में बौद्धमंत्र लिखा है (धर्म-शरीर), चढ़ाने के काम में आने वाले छोटे छोटे जलेबीनुमा स्तूप (spiral stupas), छोटे छोटे खिलौने, अनेकों प्रकार के दीये (lamps) तथा नाना प्रकार व आकार (size) के बने हुए घड़े व सुराहियाँ आदि हैं।

नं० १।

नं० २।

वज्रयानपंथ की मूर्त्तियां

उपरोक्त आलमारियों के बीच की जगह में वज्रयान संप्रदाय के प्रसिद्ध देव-देवियों की मध्यकालीन मूर्त्तियां प्रदर्शित हैं।

मञ्जुवर B(d) 19&E20·

B(d) 19 और E २० मञ्जुश्री के अनेक स्वरूपों में से एक 'मञ्जुवर' की मूर्त्तियां हैं जिनमें वे ललितासन में बैठे उपदेश दे रहे हैं।

वज्रघण्ट B(d) 20.

B(d) 20 बोधिसत्व वज्रघण्ट की मूर्त्ति है जिसके दाहिने हाथ में छाती से सटा हुआ वज्र है और बायें में घण्टा है।

हेरुक B(h) 4.

नम्बर B(h) 4 हेरुक की मूर्त्ति है जो अर्द्ध-पर्य्यङ्कासन में खड़े होकर एक मुर्दे की छाती पर नाच रहे हैं। इनके दाहिने हाथ में वज्र तथा बायें में त्रिशूल था। प्रारम्भ में यह मूर्त्ति नटराज शिव की समझी गयी थी पर साधनाओं से परीक्षण करने पर अब यह ग़लत साबित हुआ है।

मारीची B(f) 23.

B(f) 23 बौद्धों की प्रभातदेवी मरीची की मूर्त्ति है। यह प्रत्यालीढ़पद में एक पहिये के रथ पर खड़ी है, जिसमें सात सूअर जुते हैं। देवी के ६ हाथ हैं जिनमें उसने नाना प्रकार के शस्त्र धारण कर रखे हैं, तथा तीन मुख हैं जिनमें एक सुअर का सा है। मारीची के धर्मपिता ध्यानीबुद्ध वैरोचन, जिनसे यह देवी पैदा हुई है, उसके मस्तक पर मुकुट में विराजमान है।

सरस्वती B(f) 27.

B(f) 27 सरस्वती की मूर्त्ति है जो बौद्ध धर्म में भी विद्या की प्रमुख देवी मानी गई है और जिसका अपना उस संप्रदाय में

एक स्वतंत्र स्थान है। नम्बर 216/1918 ध्यानीबुद्ध वज्रसत्व से एकमात्र सम्भूत देवी चुण्डा या चुन्द्रा की मूर्त्ति है। देवी की चार भुजायें हैं जिनमें ध्यानमुद्रा में स्थित निचले दो हाथों में एक घट है। ऊपर के दोनों हाथों में जो अभयमुद्रा में उठे हुए हैं, माला तथा खिला हुआ कमल है। B(f) 19 वसुधारा या वसुंधरा की मूर्त्ति है जो बौद्ध धर्म में संवृद्धि (prosperity) की अधिष्ठात्री देवी (presiding deity) मानी गई है। यह धन से भरे दो उलटे घड़ों पर खड़ी है तथा हाथों में धान्यमंजरी ले रखी है।

चुण्डा
216/1918.

वसुधारा
B(f) 19.

दरीची के पश्चिमी भाग में सारनाथ से निकली हुई कुछ हिन्दू (पौराणिक) मूर्त्तियाँ सजी हैं। इनमें सब से मशहूर नम्बर B(h) 1 शिवजी की एक विशाल मूर्त्ति [चित्र ३(ii)] है जिसमें वे अपने त्रिशूल से एक दैत्य को मारते हुए दिखाये गये हैं। इस दैत्य को श्री सहानी तथा सर जॉन मार्शल दोनों ने त्रिपुर ठहराया था पर इसी समता की अन्य मूर्त्तियों एवं पुराणों के आधार पर हमने यह साबित किया है कि यह दैत्य 'त्रिपुर' नहीं वरन्च 'अन्धक' है।

हिन्दू धर्म की मूर्त्तियां अन्धक-बधशिव
B(h) 1.

आलमारी नम्बर २ के ठीक बग़ल में एक बिना नम्बर की मूर्त्ति रखी है जिसके हाथ में एक कपाल और त्रिशूल है तथा जिसके मस्तक पर त्रिनेत्र बना है।

महाकाल

इस मूर्त्ति को श्री सहानी ने त्रिशूल और त्रिनेत्र के आधार पर भैरव या त्र्यम्बक की बतलाया है यद्यपि, यह वज्रयान पंथ के देवता महाकाल की मालूम होती है।

षडाक्षरी महाविद्या B(f) 4-5.

कमरे के उत्तरी चबूतरे पर पूर्व की तरफ़ रखी मूर्त्तियों में B(f) 4-5 षडाक्षरी महाविद्या की प्रतिमाएं हैं जो अपने पैरों को पीछे मोड़ कर बड़े ही भव्य भाव में बैठी है। नम्बर B(e) 6 में चार हाथ वाले दो देवता तथा एक देवी की मूर्त्तियाँ बनी हैं जो कमलासन पर विराजमान हैं। श्री विनयतोष भट्टाचार्य्य ने इस त्रयी को षडाक्षरी महाविद्या और मणिधर के साथ बैठे हुए षडाक्षरी लोकेश्वर बतलाया है। आसन के नीचे इस मूर्त्ति पर जो चार मनुष्य बने हैं वे षडाक्षरी मंडल के द्वारपाल हैं। इसके बग़ल में रखी हुई चार टुकड़ों में खण्डित एक सुन्दर मूर्त्ति खसर्पण लोकेश्वर की है जो अवलोकितेश्वर का एक रूप है। साधना के अनुसार बोधिसत्व के दोनों तरफ़ ऊपर तो भृकुटी तारा और अशोककान्ता मारीची और नीचे सुधनकुमार और हयग्रीव बने हैं। B(e) 1 युग्मक मूर्त्ति बौद्धों के धनाधिपति उच्छुष्म जंभल और उसकी पत्नी वसुधारा की है। वामन आकार और लम्बा पेट लिये उच्छुष्म धनद के ऊपर प्रत्यालीढपद में खड़े हैं तथा अपने बोझ से उसे दबा कर उसके मुँह से मुक्ताराशियां उगलवा रहे हैं।

षडाक्षरी मंडल B(e) 6.

खसर्पण लोकेश्वर।

उच्छुष्म जंभल और वसुधारा B(e) 1.

चबूतरे के शेष भाग में दरवाज़े के दाहिनी तरफ़ तो खिड़की की जालियों के नमूने दिखाये गये हैं और बाईं ओर कुछ शिलालेख हैं। इन शिलालेखों में D(l) 9 सबसे महत्व का है। कारण, यह सारनाथ से प्राप्त लेखों में सब से बाद का है। उसमें कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्ध रानी कुमारदेवी द्वारा सारनाथ में धर्म-चक्र-जिनविहार नाम के एक विशाल विहार बनवाने का ज़िक्र आता है। D(l) 8 आठ टुकड़ों में टूटा हुआ एक दूसरा लेख है जिसमें यह बताया गया है कि कलचुरी कर्णदेव के राजकाल में महायान-संप्रदायानुयायी मामक नाम के किसी उपासक ने अष्टसाहस्रिक (प्रज्ञापारमिता) नामक ग्रन्थ लिखवाया तथा उसे सारनाथ स्थित सद्धर्म-चक्र-प्रवर्तनविहार के भिक्षुओं को भेंट दिया।

खिड़की की जालियां।
शिलालेख D(l) 9.
D(l) 8.

दरीची के बीच में दो टेबुल रखे हैं उनमें से नम्बर १ में नागदेवी मनसा B(f) 22 की मूर्त्ति ध्यान देने लायक़ है। इसकी पूजा आज भी बंगाल में बहुतायत से होती है। टेबुल नम्बर २ में प्रदर्शित सफ़ेद सेलखड़ी पत्थर की बनी हुई छोटी सी मूर्त्ति लोकेश्वर सिंहनाद की बड़ी ही सजीव और सुन्दर है। मूर्त्ति में बोधिसत्व महाराजलीलासन में विराजमान हैं तथा उनके हाथ में एक डंठलदार कमल है जिस पर एक छोटी तलवार

टेबल।
नं० १।
मनसा
B(f) 22.
नं० २।
लोकेश्वर
सिंहनाद
K. 16.

रखी है। ऐसे ही पत्थर के एक टुकड़े पर भगवान् बुद्ध के जीवन के कुछ दृश्य तराशे हैं जिनमें केवल बुद्ध द्वारा नालागिरि हाथी का शान्त करना एवं उनके महा-परिनिर्वाण के दृश्य ही पूरे हैं। इसी टेबुल में एक

रेवन्त।

छोटी सी पट्टिका पर हिन्दू देवता रेवन्त बने हैं जो सूर्य के पुत्र हैं। टेबुलों के बीच में भक्तों के श्रद्धाभिव्यंजक

स्तूप।

(Votive) छोटे छोटे स्तूप रखे हैं। इन्हीं के साथ

कुंडा।

साथ अलग चौकी पर मिट्टी का एक बड़ा भारी कुंडा रखा है जिसके सामने दरवाज़े से बाहर बरामदे में जाने का मार्ग है।

बरामदा

इमारती पत्थर

इस बरामदे में सारनाथ की प्रधान इमारतों में लगे हुए अनेक काल व प्रकार के पत्थर, तोरण, सुहावटी, द्वारशाखा आदि रखे हैं जिन पर तरह तरह की सुन्दर नक्काशियां तराशी हुई हैं। इनमें सबसे अधिक मार्के

विशाल सुहावटी D(d) 1.

की एक १६' लम्बी विशाल सुहावटी D(d) 1 है। इसका मुखभाग छः खानों में बंटा है जिनमें कोने के दोनों खानों में धनपति कुबेर दिखाये गये हैं। शेष

क्षान्तिवादी जातक।

खानों में क्षान्तिवादी जातक की कथा अंकित है जिसमें, कहा जाता है कि अपने किसी पूर्व जन्म में बुद्ध ने क्षान्तिवादी नामक तपस्वी के रूप में बनारस के राजा कलाबू की स्त्रियों को संतोष का उपदेश सुना कर

उन्हें भिक्षुणी बनाया तथा इस अपराध में उक्त राजा द्वारा अपना दाहिना हाथ कटवाया। यह मुहावटी लगभग ईस्वी सन् की ७वीं सदी की है।

कमरा नम्बर ४ ।

इस कमरे में प्राय: वही चीज़ें रक्खी हुई हैं जो द्विधा (duplicates) प्राप्त हुई हैं या गौण (secondary) महत्व की हैं। इनमें महत्व की चीज़ों में केवल एक तो मौर्य-कालीन बड़ी बड़ी ईंटें हैं जिनकी माप २४″ × १८″ × २½″ है और दो शिखर (capitals) D(g) 5-6 हैं जिनमें बुद्ध के जीवन के कुछ दृश्य बने हैं। D(g) 5 में अन्य दृश्यों के अतिरिक्त गौतम बुद्ध नागराज मुचलिन्द की फणछाया के नीचे सुरक्षित बैठे हैं। कहा जाता है कि बोधि प्राप्ति के समय जब भीषण तूफ़ान आया था तब इस नागराज ने अपने फणों की छाया से बुद्ध की रक्षा किया था और उनका ध्यान न टूटने दिया। D(g) 6 के एक भाग में व्याघ्री जातक की कथा अंकित है जब कि अपने किसी पूर्व जन्म में भगवान् बुद्ध ने भूखी व्याघ्री तथा उसके बच्चों की प्राणरक्षा के लिये अपने शरीर को उसे अर्पण कर दिया था।

मौर्यकालीन ईंटें।

शिखर D(g) 5. मुचलिन्द द्वारा बुद्ध की रक्षा

D(g) 6. व्याघ्री जातक

MGIPC—S4—III-9-34—21-5-41—500.

सिंह-शिखर

चित्र नं० २

शुङ्ग तथा आंध्र वेदिकायें

चित्र नं० ३

(i) B(a) 1 कुषाण बोधिसत्व (ii) B(b) 1 अन्धकवधशिव की विशाल मूर्त्ति
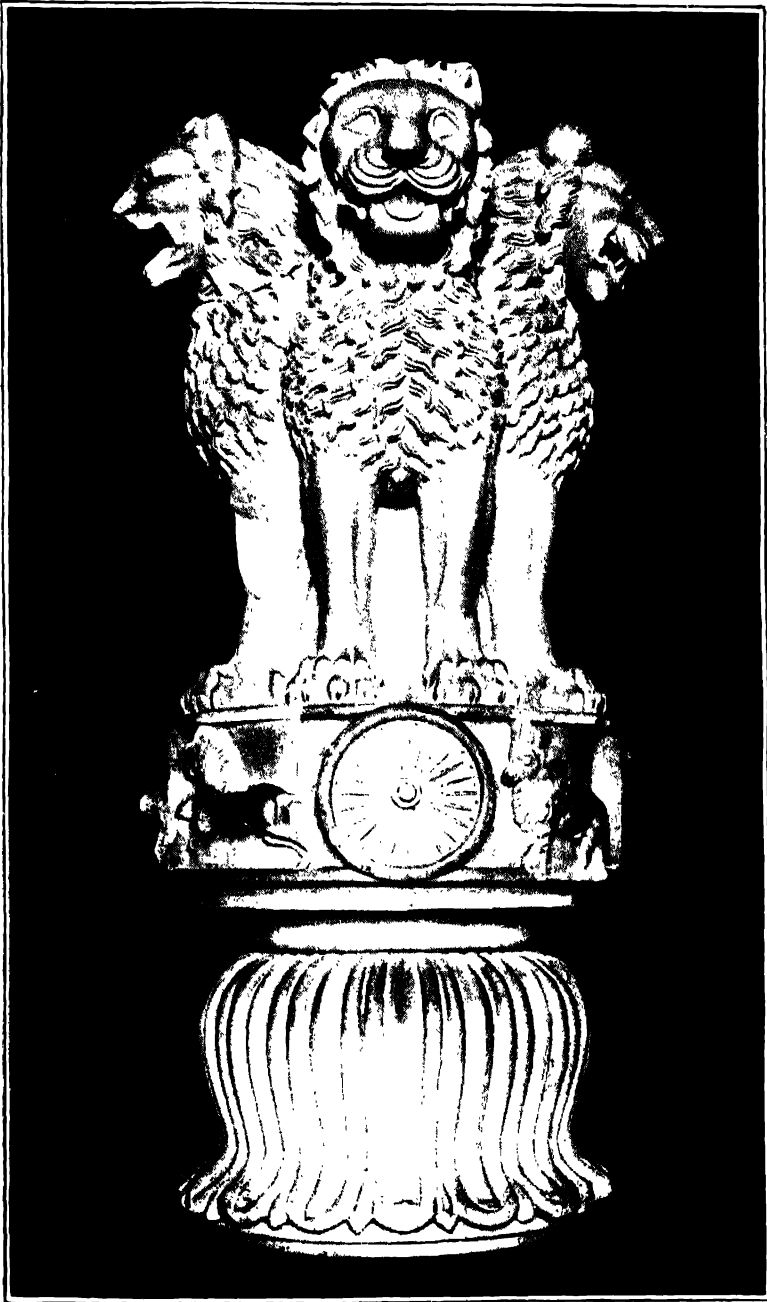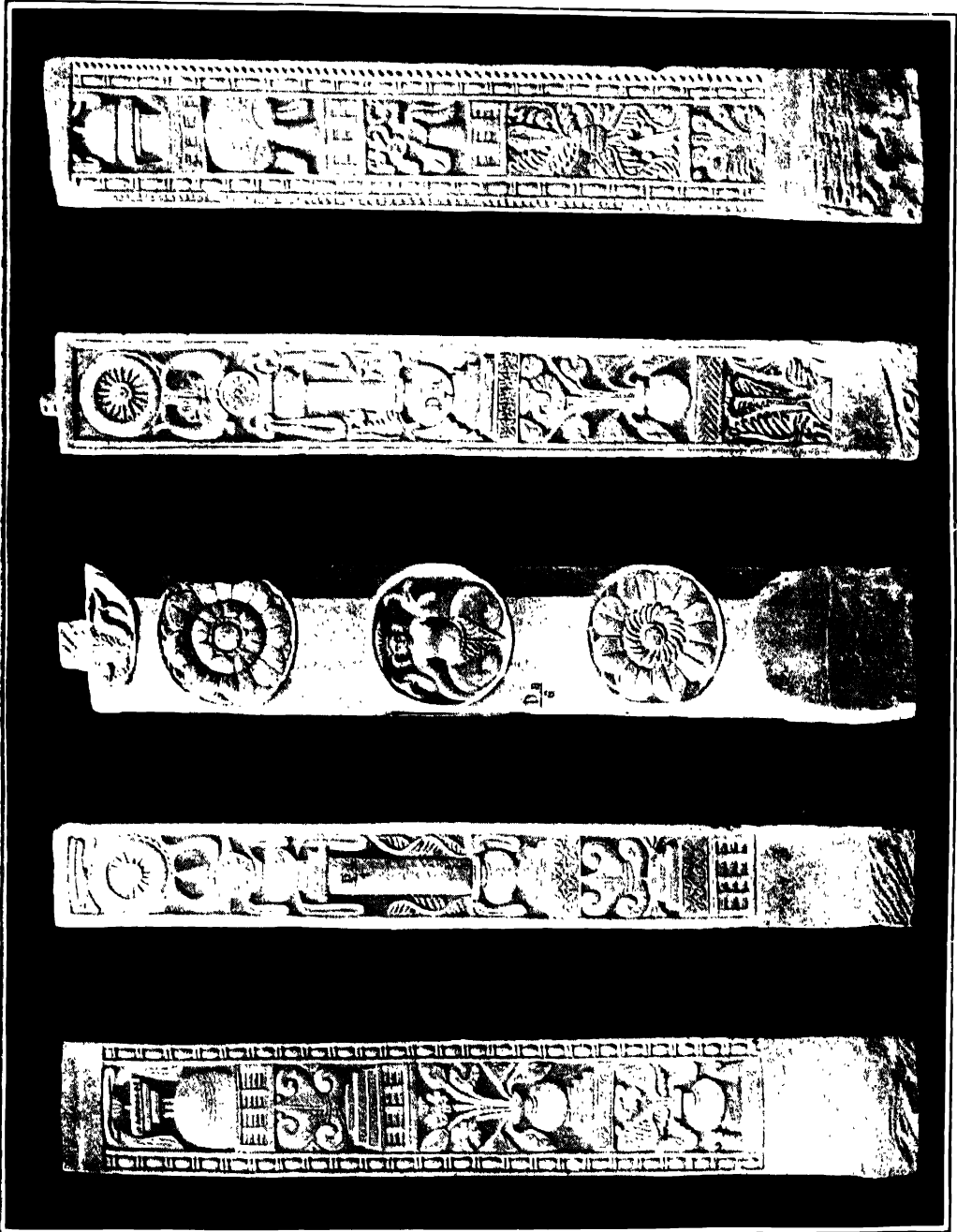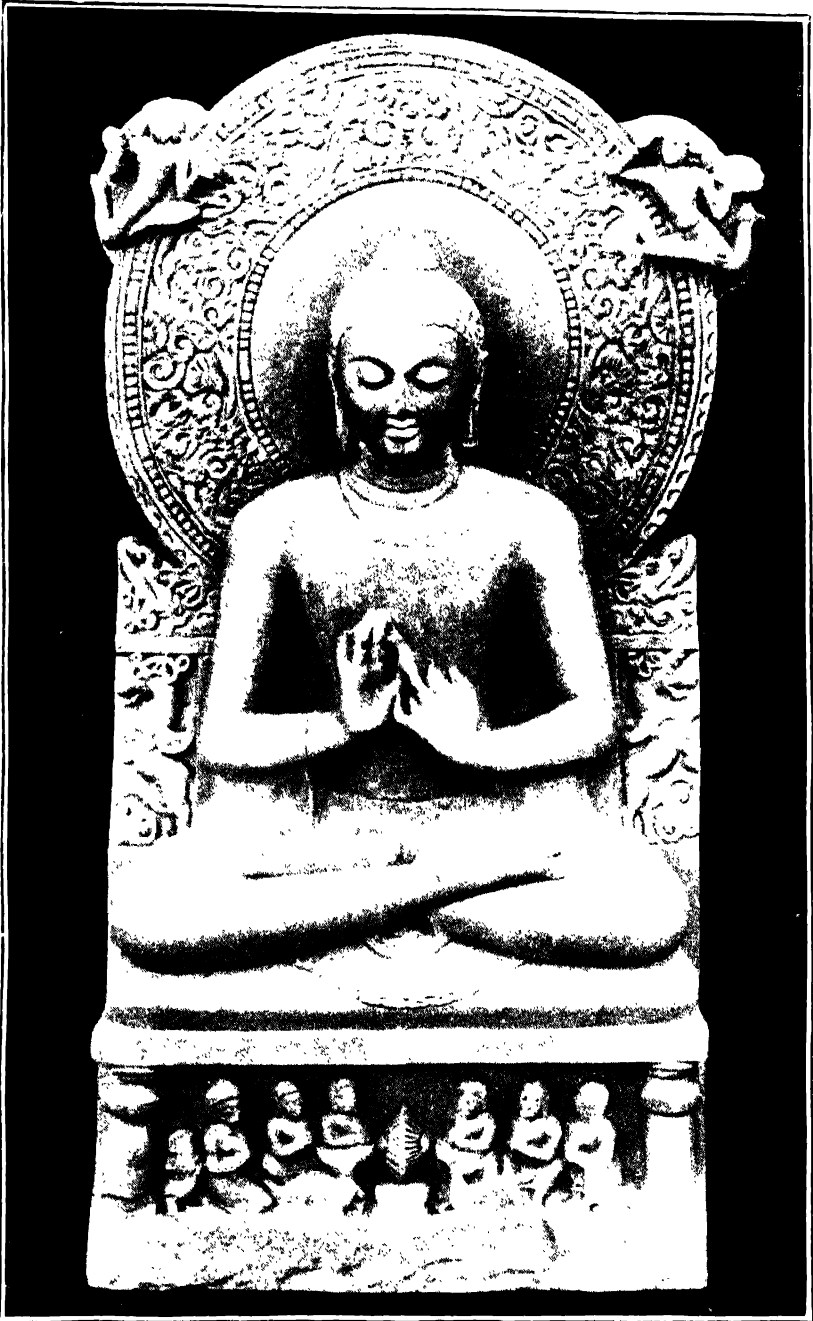
B(b) 181 धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा में भगवान् बुद्ध

(ii) B(d) 6 सिंहकवीर

(i) B(d) 1 लोकनाथ

चित्र नं० ६

(१) 2-3 बुद्ध के जीवन के कुछ दृश्य

चित्र नं० ७

B(c) I अभिलिखित बुद्धमूर्ति की चरणचौकी